रिपोर्टेबल

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

सिविल अपीलीय अधिकारिता

सिविल अपील संख्या 1527-1536/2013

राजस्थान हाउसिंग बोर्ड .... अपीलकर्ता

बनाम

न्यू पिंकसिटी निर्माण सहकारी समिति लि.व अन्य ....प्रतिवादी (गण)

के साथ

सिविल अपील संख्या 1557-1566/2013, 1577-1586/2013, 1597-1606/2013, 1537-1546/2013, 1547-1556/2013, 1567-1576/2013, 1587-1596/2013, 1607-1608/2013, 1609-1610/2013, 1611-1612/2013, 1613-1614/2013, 1615-1616/2013, 1617-1618/2013, 1619-1620/2013, 1621-1622/2013, 1623-1624/2013, 1625-1626/2013, 1627-1628/2013, 1629-1630/2013, 1631-1632/2013, 1633-1634/2013 और सिविल अपील संख्या 4183-4192/2015 @ विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 21344-21353/2013

राजस्थान भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1953 धारा 4 - भूमि का अधिग्रहण - उन खातेदारों का जो अनुसूचित जाति के थे - विचाराधीन भूमि के संबंध में खातेदारों के साथ बिक्री के लिए समझौता करने का दावा करने वाली हाउसिंग सोसाइटी द्वारा अधिग्रहण पर आपत्ति - आपत्ति खारिज - खातेदारों के पक्ष में अधिनिर्णय - तत्पश्चात सोसायटी ने बिक्री के समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए खातेदारों के खिलाफ मुकदमा दायर किया और उसके पक्ष में डिक्री प्राप्त की - संदर्भ अंतर्गत धारा 18 एक खातेदार के साथ-साथ हाउसिंग सोसाइटी द्वारा - सिविल न्यायालय ने मुआवजे 260 रुपये प्रति वर्ग गज निर्धारित करने के संदर्भ का जवाब दिया। - उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने मुआवजे को घटाकर 100 रुपये प्रति वर्ग गज किया - एकल न्यायाधीश के आदेश की पुष्टि उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने की - इसके अलावा, खंडपीठ ने अधिसूचना दिनांक 27-10-2005 के आधार पर हाउसिंग सोसाइटी को विकसित भूमि का 25% अनुदान देने का निर्देश दिया - अपील पर, निर्धारित। खातेदारों द्वारा सोसायटी (एक न्यायिक व्यक्ति) के पक्ष में बिक्री, राजस्थान किरायेदारी अधिनियम की धारा 42 के तहत अनुमेय नहीं होने के कारण शून्य थी - समझौते के आधार पर प्राप्त डिक्री किरायेदारी अधिनियम की धारा 42 अधिदेश का उल्लंघन था। और इस प्रकार शून्य था - इसलिए, हाउसिंग सोसाइटी मुआवजे के हकदार नहीं थी - अकेले खातेदार ही सही दावेदार थे - किरायेदारी अधिनियम की धारा 175 के प्रावधानों का सहारा

लेने के लिए खातेदारों की ओर से विफलता है वर्तमान मामले के तथ्यों में अप्रासंगिक - दिनांक 27-10-2005 के परिपत्र ने सोसायटी या खातेदारों को विकसित भूमि का दावा करने का कोई अधिकार नहीं दिया क्योंकि यह वर्तमान मामले में लागू नहीं है - मुआवजे का निर्धारण 100 रुपये प्रति वर्ग गज न्यायोचित है- राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955- धारा 42 और 175- अधिसूचना दिनांक 27-10-2005- भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 341 और 342।

परिसीमन - वर्ष 1982 में पारित भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अधिनिर्णय - वर्ष 1989 में किए गए अधिनियम की धारा 18 के तहत संदर्भ - खुद को भूमि का खरीदार होने का दावा करने वाली सोसायटी द्वारा - क्या ऐसा संदर्भ परिसीमा द्वारा वर्जित है - अभिनिर्धारित: अधिनियम की धारा 12(2) और 18(2) के संयुक्त पठन को द्रष्टिगत गत रखते हुए इसके अनुसार, संदर्भ कालबाधित नहीं था - राजस्थान भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1953- धारा 12(2) और 18(2)।

निर्णय

अरुण मिश्रा, न्यायाधीश

1. विशेष अनुमति याचिका संख्या 21344-21353/2015 स्वीकार की जाती है।

2. अपीलें विशेष अपील संख्या 13/2001 और अन्य संबंधित मामलों में राजस्थान उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित एक सामान्य निर्णय और आदेश दिनांक 29.10.2009 से उत्पन्न होती हैं। राजस्थान हाउसिंग बोर्ड, मूल खातेदारों और न्यू पिंक सिटी हाउसिंग कंस्ट्रक्शन को-ऑपरेटिव सोसायटी लिमिटेड (अंतरिती) (इसके बाद सोसाइटी के रूप में संदर्भित) ने विभिन्न आधारों पर इस फैसले और आदेश को चुनौती दी है। राजस्थान हाउसिंग बोर्ड ने 25 प्रतिशत विकसित भूमि और मुआवजे पर विचार करने के निर्देश को अलग करने के लिए प्रार्थना की है, जबकि मूल खातेदारों ने उन्हें मुआवजे के भुगतान के लिए प्रार्थना की है। इसी तरह, राजस्थान आवास बोर्ड ने भी मुआवजे का दावा करने के लिए सोसायटी की पात्रता पर सवाल उठाया है। सोसायटी ने भूमि के अधिक मूल्य का भी दावा किया है।

3. राज्य सरकार ने राजस्थान भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1953 (संक्षेप में '1953 का अधिनियम') की धारा 4 के तहत 12.1.1982 को एक अधिसूचना जारी की थी। यह भूमि राजस्थान आवास बोर्ड की आवास योजना के लिए अधिग्रहित की गई थी। दिनांक 22.05.1982 को 1953 के अधिनियम की धारा 9 के तहत राजस्थान आवास बोर्ड को कब्जा सौंप दिया गया था। सोसायटी ने भूमि अधिग्रहण अधिकारी (एल ए ओ) के समक्ष आपत्तियां पेश कीं।समिति द्वारा दी गई आपत्तियों को दिनांक 4.9.1982 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। इसके बाद,

एलएओ द्वारा 30.11.1982 को खातेदारों के पक्ष में चार मामलों के संबंध में अधिनिर्णय पारित किया गया। शेष मामलों के संबंध में अधिनिर्णय एल ए ओ द्वारा 2.1.1989 को पारित किया गया था। 1953 के अधिनियम की धारा 12 (2) के तहत 31.12.1988 को 30.11.1982 के अधिनिर्णय के संबंध में समिति को नोटिस जारी किया गया था।

4. सोसायटी ने 1953 के अधिनियम की धारा 18 के तहत संदर्भ के लिए आवेदन किया। 17.04.1989 को सिविल न्यायालय को संदर्भित किया गया। एक खातेदार प्रभु ने भी वाद संख्या 43/1989 के रूप में दर्ज करने की मांग की। सिविल न्यायालय ने 23.1.1994 को निर्देश का उत्तर दिया जिसमें मुआवजा 260 रुपये प्रति वर्ग गज निर्धारित किया गया। राजस्थान किराया अधिनियम की धारा 42 के तहत सोसायटी की पात्रता के संबंध में आवास बोर्ड द्वारा उठाई गई आपत्ति को दरकिनार कर दिया गया। उच्च न्यायालय में अपील करने पर, एकल पीठ ने दिनांक 22.03.1999 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा मुआवजे को घटाकर 100 रुपये प्रति वर्ग गज कर दिया। खण्ड पीठ ने न केवल उक्त अधिनिर्णय की पुष्टि की है, बल्कि विशेष अपील संख्या 697/1995 में एक खंड पीठ द्वारा पारित आदेश के संदर्भ में 27.10.2005 के परिपत्र के मद्देनजर विकसित भूमि के 25% के आवंटन पर विचार करने का भी निर्देश दिया है।

5. खातेदारों ने दावा किया है कि वे जाति से 'बैरवा'हैं जो संविधान अनुसूचित जाति आदेश, 1950 के तहत अधिसूचित एक अनुसूचित जाति है।

6. सोसायटी ने दावा किया है कि उसने भूमि के खातेदारों के साथ 15.2.1974, 17.2.1974, 21.2.1974 और 22.1.1976 को भूमि बेचने का करार किया था। सोसायटी ने यह भी दावा किया है कि उसने आवासों के निर्माण के लिए वित्तीय सहायता के लिए राजस्थान हाउसिंग फाइनेंस सोसायटी लिमिटेड को आवेदन किया था और शहरी सुधार ट्रस्ट, जयपुर द्वारा उसे दिनांक 7.6.1982 को एक अनापत्ति प्रमाण पत्र जारी किया गया था। सोसायटी ने अधिग्रहण पर आपत्ति की लेकिन चार मामलों में 3.9.1982 को आपत्तियां खारिज कर दी गईं जिनमें से संदर्भ वाद संख्या 1989,2089,3089 और 4089 उत्पन्न हुए। यह अधिनिर्णय30.11.1982 को पारित किया गया था। बाद में, ऐसा प्रतीत होता है कि सोसाइटी ने खातेदारों के विरुद्ध वर्ष 1986 में विक्रय के करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए एक सिविल मुकदमा दायर किया और समझौता डिक्री 2.10.1986,3.10.1986 और 24.1.1988 को पारित की गई और इस प्रकार वाद को सोसाइटी के पक्ष में डिक्री कर दिया गया।

7. राज्य सरकार, राजस्थान हाउसिंग बोर्ड और खातेदारों की ओर से यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया था कि राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 में निहित प्रावधानों के मद्देनजर सोसायटी और खातेदारों के बीच

लेनदेन, यदि कोई हो तो वह प्रारंभतः शून्य था। इस प्रकार, शून्य लेन-देन के आधार पर प्राप्त डिक्री शून्य है और क्षतिपूर्ति का दावा करने के लिए सोसाइटी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था।

8. सोसायटी की ओर से हमारे सामने आग्रह किया गया कि निर्धारित क्षतिपूर्ति अपर्याप्त है। संदर्भ न्यायालय द्वारा निर्धारित मुआवजे की मात्रा को कम करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा मौखिक साक्ष्य की अनदेखी की गई है। सोसायटी के करार के आधार पर मुआवजे का दावा करने का अधिकार है जो सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के रूप में समाप्त हो गया है।राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 175 के तहत निर्धारित 30 वर्ष की अवधि के भीतर कब्जा वापस लेने के लिए खातेदारों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई है। उच्च न्यायालय ने विकसित भूमि का 25% सोसायटी को आवंटित करने का सही आदेश दिया है। सोसायटी एक ऐसा व्यक्ति है जो सिविल न्यायालय के फैसले और डिक्री के आधार पर मुआवजा प्राप्त करने का इच्छुक है। इसने भूमि का विकास किया है और विकास पर कुछ राशि खर्च की है और संपत्ति रखने का अधिकार अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही छीना जा सकता है। संपत्ति रखने के बेहतर अधिकार का दावा करने के लिए एक क़ानून में निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन किया जाना चाहिए जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 300 क में प्रदान किया गया है। राज्य विभिन्न धारकों के साथ इसी तरह का व्यवहार करने के लिए बाध्य है जैसा कि अन्य लोगों को भूमि आवंटित

की गई है। यह अपने निर्णय पर कार्य करने और विकसित भूमि का 25% सोसायटी को आवंटित करने के लिए बाध्य है। राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 द्वारा बनाए गए रोक पर आधारित अभिवाक को साक्ष्य प्रस्तुत करके सिद्ध नहीं किया गया है।

9. खातेदारों की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि यद्यपि सिविल न्यायालय की डिक्रियां कपटपूर्ण और मिथ्या हैं और राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 में अंतर्विष्ट उपबंधों की शक्ति पर शून्य है, लोक नीति के विरुद्ध हैं, लेन-देन संव्यवहार शून्य होने के कारण, सोसाइटी के पास अधिक क्षतिपूर्ति का दावा करने की कोई अधिस्थिति, अधिकार, हक या हित नहीं है। यह अधिनिर्णय1982 में भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा खातेदारों के पक्ष में पारित किया गया था। वे बढ़े हुए मुआवजे के हकदार हैं न कि सोसायटी के। यह भूमि राजस्व अभिलेखों में खातेदारों के नाम दर्ज थी। 1974 और 1976 के करारों को पेश नहीं किया गया है और एक बार लेन-देन शून्य हो जाने के बाद, तत्काल कार्यवाही में इस पर सवाल उठाया जा सकता है। वे मुआवजे के हकदार हैं और आवंटित होने पर विकसित भूमि प्राप्त करने के भी हकदार हैं।

10. राज्य सरकार के साथ-साथ राजस्थान हाउसिंग बोर्ड की ओर से यह तर्क दिया गया था कि सोसायटी किसी भी मुआवजे की हकदार नहीं है क्योंकि राजस्थान किरायेदारी अधिनियम की धारा 42 द्वारा इस तरह के लेनदेन को शून्य घोषित किया गया है। दिनांक 30.11.1982 के

अधिनिर्णय द्वारा शामिल भूमि के संबंध में वर्ष 1989 में मांगा गया संदर्भ स्पष्ट रूप से परिसीमा द्वारा वर्जित था। राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के आधार पर संदर्भ न्यायालय के समक्ष आपत्ति की गई थी और यह किसी भी स्तर पर विवादित नहीं है कि खातेदार बैरवा जाति से संबंधित हैं जो एक अनुसूचित जाति है। इस प्रकार, ऐसी भूमि के अंतरण पर धारा 42 के तहत अधिनियमित रोक स्पष्ट रूप से आकर्षित होती है। उच्च न्यायालय और संदर्भ न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को रद्द किए जाने योग्य है। गुणावगुण के आधार पर, मुआवजे की वृद्धि का कोई मामला नहीं बनाया गया था। सोसायटी का भूमि पर कोई अधिकार, शीर्षक या हित नहीं है। उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने विकसित भूमि के 25 प्रतिशत के आवंटन का निर्देश देकर कानून की दृष्टि से गंभीर गलती की थी। विकसित भूमि के आवंटन के लिए सोसायटी द्वारा की गई प्रार्थना को राजस्थान हाउसिंग बोर्ड द्वारा 14.5.2009 और 16.9.2009 को खारिज कर दिया गया था। इन आदेशों पर कोई सवाल नहीं उठाया गया था। अन्यथा भी 13.11.2001 के परिपत्र और 27.10.2005 के परिपत्र लागू नहीं होते हैं और इस न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं। विकसित भूमि आवंटित करने का निर्देश खारिज किए जाने योग्य है।

11. सबसे पहले, हम इस प्रश्न का उल्लेख करते हैं कि क्या उन चार मामलों के संदर्भ में, जिनमें 30.11.1982 को अधिनिर्णयपारित किया गया था, परिसीमा की अवधि के भीतर था। माना जाता है कि सोसाइटी से

कब्जा 22.5.1982 को लिया गया था। सोसायटी ने 20 जुलाई, 1982 को एल ए ओ के समक्ष आपत्तियां प्रस्तुत की थी। 4.9.1982 को आपत्तियों को खारिज करते हुए, शहरी विकास प्राधिकरण के विशेष अधिकारी, एलएओ ने एकतरफा रूप से देखा था कि अधिग्रहण को भारत के संविधान के अनुच्छेद 300 क में निहित प्रावधानों का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है, सोसायटी का भूमि पर कोई स्वामित्व नहीं है, इसका भूमि में कोई हित नहीं है। ऐसे में उसे आपत्ति जताने का अधिकार नहीं है।उक्त आदेश को अंतिम रूप दे दिया गया था और 30.11.1982 को अधिनिर्णयपारित किया गया था।इस प्रकार पारित अधिनिर्णयमें यह भी उल्लेख किया गया है कि खातेदारों की ओर से एक अधिवक्ता उपस्थित हुए थे और मुआवजे के संबंध में आपत्ति दर्ज कराना चाहते थे। उक्त अधिवक्ता कुछ खातेदारों की ओर से पेश हुए और उन्होंने कहा कि उन्होंने जमीन को सोसाइटी को बेच दिया था। हालांकि, उनकी ओर से कोई दावा याचिका दायर नहीं की गई थी। दिनांक 30.11.1982 के अधिनिर्णयमें एक संदर्भ भी है कि सोसाइटी द्वारा दर्ज आपत्ति को 4.9.1982 को अस्वीकार कर दिया गया था। अधिनिर्णयसे यह स्पष्ट है कि यह समिति द्वारा खातेदारों के पक्ष में उठाई गई आपत्तियों को खारिज करने के बाद पारित किया गया था।

12. राजस्थान भूमि अधिग्रहण अधिनियम के उपबंध भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 और 1953 के अधिनियम की धारा 12 के उपबंधों के समतुल्य हैं।

"जिलाधीश का अधिनिर्णय कब अंतिम होगा।- (1) ऐसा अधिनिर्णय जिलाधीश के अधिकारी में दर्ज किया जाएगा और इसमें इसके पश्चात् यथा उपबंधित के सिवाय, जिलाधीश और हितबद्ध व्यक्तियों के बीच भूमि के सही क्षेत्र और मूल्य के बारे में अंतिम और निश्चायक साक्ष्य होगा, चाहे वे क्रमशः कलेक्टर के समक्ष उपस्थित हुए हों या नहीं और हितबद्ध व्यक्तियों के बीच प्रतिकर का विभाजन।

(2) जिलाधीश अपने अधिनिर्णय या उसके संशोधन की तत्काल सूचना हितबद्ध व्यक्तियों को देगा जो अधिनिर्णय या उसका संशोधन किए जाने के समय व्यक्तिगत रूप से या उनके प्रतिनिधियों द्वारा उपस्थित नहीं हैं।"

13. धारा 12 (2) यह अपेक्षा करती है कि ऐसे हितबद्ध व्यक्तियों को, जो अधिनिर्णय दिए जाने के समय व्यक्तिगत रूप से या उनके प्रतिनिधि द्वारा उपस्थित नहीं हैं, अधिनिर्णय की तत्काल सूचना दी जाए। 1953 के अधिनियम की धारा 18 (2) में यह अपेक्षित है कि यदि अधिनिर्णय दिए जाने के समय व्यक्ति या प्रतिनिधि उपस्थित था तो अधिनिर्णय की तारीख से छह सप्ताह के भीतर आपत्तियां दर्ज कराई जावे। अन्य मामलों में, धारा 12 (2) के तहत जिलाधीश से नोटिस प्राप्त होने के छह सप्ताह

के भीतर या अधिनिर्णय की तारीख से छह महीने के भीतर, जो भी अवधि पहले समाप्त होगी।

14. वर्तमान मामले में, विशेष अधिकारी द्वारा 31.12.1988 को धारा 12 (2) के तहत सोसाइटी को नोटिस जारी किया गया था, जिसमें सोसाइटी को 'हितबद्ध व्यक्ति'माना गया था और सूचित किया गया था कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11 के अनुसार एक अधिनिर्णय 30.11.1982 को पारित किया गया था। उपरोक्त नोटिसों के आधार पर सोसायटी की ओर से आग्रह किया गया था कि संदर्भ मांगने की परिसीमा 31.12.1988 को जारी नोटिस की प्राप्ति की तारीख से शुरू होगी। मांगा गया संदर्भ समय सीमा के भीतर था।

15. *मदन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2014) 2 एससीसी 720]* मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है। और *राजा हरीश चंद्र राज सिंह बनाम उप भूमि अधिग्रहण अधिकारी और अन्य [एआईआर 1961 एससी 1500]* में जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि पक्षकार को आदेश का वास्तविक या रचनात्मक संचार होना चाहिए जो निष्पक्ष खेल और प्राकृतिक न्याय की एक अनिवार्य आवश्यकता है। अधिनियम की धारा 18 (2) के परंतुक (ख) में प्रयुक्त अधिनिर्णय की तारीख वह तारीख होनी चाहिए जब अधिनिर्णय के बारे में पक्षकार को सूचित किया जाता है या उसके द्वारा वास्तव में या रचनात्मक रूप से जाना जाता है। उक्त मामले में अधिनिर्णय 25.03.1951 को पारित किया

गया था। तथापि, अधिनिर्णयकी सूचना अपीलकर्ता को धारा 12(2)) द्वारा को दी गई जिसके द्वारा उसे कथित अधिनिर्णय बनाने के बारे में सूचना प्राप्त हुई। यह पाया गया कि जिलाधीश के लिए अधिनियम की धारा 12 (2) के तहत अपने अधिनिर्णय के बारे में तत्काल नोटिस देना आवश्यक था इस न्यायालय ने एक पक्षकार द्वारा अधिनिर्णय के जानकारी के संबंध में *राजा हरीश चन्द्र (पूर्वोक्त)* में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया हैः

> "6..... ऐसे निर्णय से प्रभावित पक्षकार का ज्ञान, चाहे वह वास्तविक हो या रचनात्मक, एक आवश्यक तत्व है जिसका निर्णय को लागू करने से पहले संतुष्ट किया जाना चाहिए। इस प्रकार माना गया कि अधिनिर्णय देने का कार्य केवल अधिनिर्णय लिखने या उस पर हस्ताक्षर करने या उसे जिलाधीश के कार्यालय में दाखिल करने तक सीमित नहीं है, इसमें संबंधित पक्षकार को उक्त अधिनिर्णय की सूचना या तो वास्तव में या रचनात्मक रूप से शामिल होनी चाहिए। यदि अधिनिर्णय उस पक्षकार की उपस्थिति में सुनाया जाता है जिसके अधिकार उससे प्रभावित होते हैं तो यह कहा जा सकता है कि अधिनिर्णय सुनाए जाने पर दिया गया है।यदि अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख के बारे में पक्षकार को सूचित कर दिया जाता है और तदनुसार

यह घोषित किया जाता है कि पहले घोषित की गई तारीख को उक्त पक्षकार को सूचित कर दिया गया है, भले ही उक्त पक्षकार इसके अधिनिर्णय के घोषणा की तारीख को वास्तव में उपस्थित न हो। इसी प्रकार यदि घोषणा की तारीख के नोटिस के बिना कोई अधिनिर्णय घोषित किया जाता है और कोई पक्षकार उपस्थित नहीं होता है तो यह कहा जा सकता है कि अधिनिर्णय तब दिया जाता है जब इसकी सूचना बाद में पक्षकार को दी जाती है। अधिनिर्णय से प्रभावित पक्षकार का ज्ञान, चाहे वह वास्तविक हो या रचनात्मक, निष्पक्षता और प्राकृतिक न्याय की एक आवश्यक आवश्यकता है, परन्तुक में प्रयुक्त 'अधिनिर्णय की तारीख'अभिव्यक्ति का अर्थ वह तारीख होना चाहिए जब या तो अधिनिर्णय की संसूचना पक्षकार को दी जाता है या वह वास्तव में या रचनात्मक रूप से जानता है। इसलिए, हमारी राय में, परन्तुक में प्रयुक्त "जिलाधीश के अधिनिर्णय की तारीख"से धारा 18 तक शब्दों का शाब्दिक या यांत्रिक रूप से अर्थ लगाना अनुचित होगा।”

16. *मुथिया चेट्टियार बनाम आयकर आयुक्त, मद्रास [ए. आई. आर. 1951 मद्रास 204]* वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के विनिश्चय पर इस न्यायालय द्वारा *हरीश चन्द्र (पूर्वोक्त)* में इस प्रकार विचार किया गया और अनुमोदित किया गयाः

> "10 तथापि, यह इंगित करना उचित होगा कि बम्बई उच्च न्यायालय ने भारतीय आय-कर अधिनियम की धारा 33क (2) द्वारा विहित परिसीमा के बारे में उपबंध के प्रभाव से निपटने में कुछ भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। यह प्रावधान निर्दिष्ट श्रेणी के आदेशों के संशोधन के लिए किसी निर्धारिती द्वारा आवेदन के लिए परिसीमा निर्धारित करता है और इसमें कहा गया है कि इस तरह का आवेदन आदेश की तारीख से एक वर्ष के भीतर किया जाना चाहिए। यह महत्वपूर्ण है कि परिसीमा की समान अवधि का उपबंध करते हुए धारा 33 (1) विशेष रूप से यह अधिकथित करती है कि उसमें विहित साठ दिनों की परिसीमा की गणना उस तारीख से की जानी है जिस तारीख को प्रश्नगत आदेश की संसूचना निर्धारिती को दी जाती है। दूसरे शब्दों में, परिसीमा विहित करते हुए धारा 33 (1) में स्पष्ट रूप से आदेश की संसूचना की तारीख से अवधि के प्रारंभ

के लिए उपबंध किया गया है, जबकि धारा 33 क (2) में ऐसे किसी संसूचना का निर्देश नहीं किया गया है और स्वाभाविक रूप से यह तर्क दिया गया है कि संसूचना धारा 33क (2) के अधीन संसूचना अप्रासंगिक थी और उसकी संसूचना के निर्देश के बिना आदेश करने से परिसीमा प्रारंभ होगी। इस तर्क को बंबई उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह मानना एक युक्तियुक्त निर्वचन होगा कि आदेश देने से प्रभावित पक्ष को उक्त आदेश का नोटिस वास्तविक या रचनात्मक लगता है। *जहांगीर बोमनजी ए आई आर 1954 बम्बई 419* के मामले में उसी उच्च न्यायालय के निर्णय के साथ इस निर्णय और विशेष रूप से इसके समर्थन में दिए गए कारणों का सामंजस्य करना आसान नहीं होगा। भारतीय आयकर अधिनियम की धारा 33क (2) के अधीन सुसंगत धारा का भी मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा *ओ. ए. ए. एम. मुथिया चेतियार बनाम आयकर आयुक्त, मद्रास [आई. एल. आर. 1951 मद्रास 815]* में इसी प्रकार अर्थान्वयन किया गया है। यदि किसी व्यक्ति को एक निर्धारित

> समय के भीतर किसी प्रतिकूल आदेश से छुटकारा पाने के लिए एक उपाय का सहारा लेने का अधिकार दिया जाता है, , राजमन्नार, सी.जे. ने कहा, "परिसीमा की गणना उस तारीख से पहले नहीं की जानी चाहिए जिस तारीख को पीड़ित पक्ष को वास्तव में आदेश के बारे में पता था या आदेश को जानने का अवसर था और इसलिए आदेश का ज्ञान होना माना जाना चाहिए"।दूसरे शब्दों में, मद्रास उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि धारा 33क (2) में 'संसूचना की तारीख से'शब्दों के प्रयोग का लोप करने का यह अर्थ नहीं है कि किसी पक्षकार के विरुद्ध परिसीमा उस पक्षकार के उक्त आदेश के बारे में या तो ज्ञात होने से पहले ही आरंभ हो सकती है या उसे इसके बारे में ज्ञात होना चाहिए था।हमारी राय में यह निष्कर्ष स्पष्ट रूप से सही है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी भी पक्ष को वास्तविक जानकारी होनी चाहिए या रचनात्मक सूचना होनी चाहिए अर्थात उक्त आदेश के बारे में जानकारी होनी चाहिए।

17. वर्तमान मामले में यह स्पष्ट है कि हाउसिंग सोसाइटी ने आपत्तियों को प्राथमिकता दी थी और वह भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया और मुआवजे

के निर्धारण से अवगत थी और उसने आपत्तियां दायर की थीं जो 4.9.1982 को खारिज कर दी गई थीं। इस प्रकार, जब इस प्रकार से अधिनिर्णय पारित किया गया था तो अधिनिर्णय की रचनात्मक जानकारी को उचित रूप से माना जा सकता है।कानूनी कल्पना में रचनात्मक नोटिस का मतलब है कि व्यक्ति को एक तर्कसंगत व्यक्ति के रूप में जानना चाहिए। भले ही उन्हें इसकी वास्तविक जानकारी न हो। रचनात्मक सूचना का अर्थ होता है, एक व्यक्ति को एक तथ्य की जानकारी होनी चाहिए। कहा जाता है कि एक व्यक्ति को किसी तथ्य की जानकारी होती है जब वह वास्तव में किसी तथ्य को जानता है, लेकिन जानबूझकर जांच या खोज से परहेज नहीं करता है, जिसे उसे करना चाहिए था, या घोर लापरवाही उसे पता होती। रचनात्मक सूचना, कानून द्वारा अनुमानित एक सूचना होती है, जो वास्तविक या औपचारिक सूचना से अलग होती है, जिसे कानून द्वारा नोटिस के बराबर माना जाता है।

18. इस न्यायालय ने हरीश चंद्र (पूर्वोक्त) मामले में रचनात्मक नोटिस की अवधारणा को बरकरार रखा है। यह भी स्पष्ट है कि सोसाइटी ने मुआवजे के निर्धारण के संबंध में अन्य लंबित मामलों में सक्रिय रूप से भाग लिया था, जिसमें 2.1.1989 को अधिनिर्णय पारित किया गया था। इस प्रकार, धारा 12 (2) के तहत जारी किए गए और 31.12.1988 को प्राप्त किए गए नोटिस के बल पर मांगे गए निर्देश में उन चार मामलों के संबंध में, जिनमें अधिनिर्णय 30.11.1982 को पारित किया गया था, निर्देश की मांग

करने के लिए सोसाइटी को परिसीमा प्रदान नहीं की जाएगी क्योंकि इसे नोटिस इस आधार पर पूरी तरह से अनावश्यक था कि उसकी आपत्ति को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उसका भूमि में अधिकार, हक या हित नहीं था। इस प्रकार दिनांक 4.9.1982 के आदेश को ध्यान में रखते हुए इसे 'हितबद्ध व्यक्ति'नहीं कहा जा सकता है। यह नोटिस विशेष अधिकारी को ज्ञात कारणों से जारी किया गया था। यह आश्चर्यजनक है कि कैसे और किन कारणों से छह साल बाद नोटिस जारी किया गया। हमें इस पहलू पर आगे जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमारी राय है कि तथ्यों और परिस्थितियों में, सोसाइटी को दिनांक 30.11.1982 के अधिनिर्णय की एक रचनात्मक सूचना थी. इस प्रकार, राजस्थान भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 12(2) और 18(2) के संयुक्त पठन के मद्देनजर, यह एल ए ओ के लिए काल वर्जित आवेदन के आधार पर मामले को सिविल न्यायालय को भेजें।

19. इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के दृष्टिगत सोसायटी द्वारा मूल खातेदारों के साथ किया गया लेन-देन शून्य है और क्या उस आधार पर इसे संदर्भ बनाए रखने और मुआवजे का दावा करने का अधिकार था? कहा गया है कि सोसाइटी ने 17.2.1974, 21.2.1974 और 21.2.1976 को बिक्री के लिए करार किए थे। सोसायटी द्वारा इन समझौतों को अभिलेख पर नहीं रखा गया है। यह सोसायटी का दायित्व था कि वह इन करारों को पेश करे।चाहे जो भी

हो।सोसायटी ने अपने द्वारा दायर जवाबी हलफनामों के साथ खातेदारों के कुछ हलफनामे दाखिल किए हैं। राम प्यारी और अन्य के मामले में, विभिन्न खातेदारों के हलफनामे सोसायटी द्वारा दायर किए गए हैं जिसमें उनकी जाति को 'बैरवा'के रूप में उल्लेख किया गया है।मूल खातेदारों की जाति कभी विवादित नहीं रही।'बैरवा'जाति एक अनुसूचित जाति है।इस न्यायालय के समक्ष भी विशेष अनुमति याचिका राम प्यारी के मामले में इस आशय का प्रकथन किया गया है कि मूल खातेदार अनुसूचित जाति से संबंधित हैं और राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के अधिदेश के अनुसार अनुसूचित जाति से संबंधित न होने वाले व्यक्ति के पक्ष में बिक्री शून्य है।सोसायटी की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि खातेदार 'बैरवा'हैं और अनुसूचित जाति से संबंधित हैं। संदर्भ न्यायालय के समक्ष भी, राज्य सरकार का दृष्टिकोण यह था कि चूंकि खातेदार अनुसूचित जाति से संबंधित हैं, इसलिए राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 द्वारा संव्यवहार को प्रतिबंधित किया गया था। सोसायटी की ओर से जवाबी शपथ पत्र में कहा गया था कि चूंकि यह एक सोसायटी है, इसलिए धारा 42 के प्रावधानों की कठोरता आकर्षित नहीं होती है और इसने राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के उल्लंघन में बेची गई भूमि को नियमित करने के लिए राजस्थान सरकार द्वारा दिनांक 1.9.1984 को जारी परिपत्र पर भरोसा किया था। सोसायटी स्पष्ट और श्रेणीबद्ध प्रकथनों को अस्वीकार करने में

विफल रही है, अस्वीकार नहीं करना तथ्यों को निर्विवाद बनाता है।इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि खातेदार अनुसूचित जाति के नहीं हैं। यहां तक कि प्रतिवादी संख्या 2 के जवाबी शपथ पत्र के जवाब में याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए प्रत्युत्तर के मद्देनजर सोसायटी की ओर से दायर अतिरिक्त शपथ पत्र में भी, मूल खातेदारों की जाति विवादित नहीं है। इस प्रकार, हमारी यह सुविचारित राय है कि मूल खातेदार जाति से 'बैरवा'हैं जो अनुसूचित जाति है और वे राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 में निहित प्रावधानों के संरक्षण के हकदार हैं।

20. राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के उपबंध किसी अनुसूचित जाति द्वारा किसी अनुसूचित जाति के व्यक्ति या किसी अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ किए गए संव्यवहार को शून्य घोषित करते हैं। राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 इस प्रकार उद्धृत हैः

> "धारा 42 - बिक्री, उपहार और वसीयत पर सामान्य प्रतिबंध
>
> 1 [किसी खातेदार काश्तकारों द्वारा उसकी पूरी या उसके हिस्से में उसके हित की बिक्री, उपहार या वसीयत शून्य होगी, यदि
>
> 2 [* *]

(ख) ऐसा विक्रय, दान या वसीयत अनेक अनुसूचित जातियों द्वारा ऐसे व्यक्ति के पक्ष में किया जाता है जो अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं है या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा ऐसे व्यक्ति के पक्ष में किया जाता है जो अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है।

3 [* *]

[(खख) ऐसा विक्रय, उपहार या वसीयत, धारा (ख) में किसी बात के होते हुए भी, सहारिया अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा ऐसे व्यक्ति के पक्ष में है जो उक्त सहारिया जनजाति का सदस्य नहीं है।]4"

21. दिनांक 15.2.1974, 17.2.1974, 21.2.1974 और 21.2.1976 के तथाकथित करार, जो कथित रूप से सोसाइटी द्वारा खातेदारों के साथ किए गए थे, इस प्रकार राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के अधिदेश के अनुसार स्पष्ट रूप से शून्य थे। इस वर्तमान मामले में धारा 4 के तहत अधिसूचना 12.1.1982 को जारी की गई थी। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 53क के तहत आंशिक निष्पादन का तर्क भी सोसायटी को उपलब्ध नहीं था क्योंकि लेन-देन शून्य है।

22. समान रूप से यह कहना भी निरर्थक है कि चूंकि सोसाइटी एक विधिक व्यक्ति है, इसलिए बिक्री को राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। अनुसूचित जाति के एक व्यक्ति द्वारा अनुसूचित जाति के किसी अन्य व्यक्ति को 'बिक्री'की अनुमति है। सोसायटी को अनुसूचित जाति का व्यक्ति नहीं कहा जा सकता।सोसायटी को भारत के संविधान के अनुच्छेद 341 के तहत जारी अधिसूचना में शामिल व्यक्ति नहीं कहा जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 341 में राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के संबंध में अनुसूचित जाति को शामिल करने के लिए अधिसूचना जारी करने की परिकल्पना की गई है। राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 (ख) में 'व्यक्ति'अभिव्यक्ति एक प्राकृतिक व्यक्ति के लिए है न कि एक विधिक व्यक्ति के लिए और केवल यह तथ्य कि सोसाइटी के कुछ व्यक्ति अनुसूचित जाति से संबंधित हैं, इस तरह के एक हाउसिंग सोसाइटी के साथ लेन-देन को वैध नहीं बनाते हैं। इस न्यायालय ने *राजस्थान राज्य व अन्य बनाम अंजनी ऑर्गेनिक हर्बल प्राइवेट लिमिटेड [(2012) 10 एससीसी 283]* वाले मामले में राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के उपबंधों के प्रश्न पर विचार किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि विधिक व्यक्ति की ओर न्यायालय आकर्षित होता हैः

"12. अधिनियम की धारा 42 (ख) में हम पाते हैं कि 'अनुसूचित जाति'और 'अनुसूचित जनजाति'पदों को

संवैधानिक प्रावधानों के साथ पढ़ा जाना चाहिए और यदि ऐसा है तो 'जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है'अभिव्यक्ति का अर्थ संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 के अनुसार सार्वजनिक अधिसूचना में शामिल लोगों के अलावा अन्य व्यक्ति होगा।अधिनियम की धारा 42 (ख) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "व्यक्ति"इसलिए केवल एक प्राकृतिक व्यक्ति हो सकता है न कि एक विधिक व्यक्ति, अन्यथा, उस धारा का संपूर्ण उद्देश्य विफल हो जाएगा। यदि कंपनी के तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो वह अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति से भूमि खरीद सकती है और फिर इसे गैर-अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को बेच सकती है, ऐसी स्थिति से विधायिका बचना चाहती थी। कोई कार्य जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया जा सकता है, वह अप्रत्यक्ष रूप से सांविधिक प्रतिबंधों को पार करके नहीं किया जा सकता है।

13. अतः, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय का यह तर्क कि प्रतिवादी एक विधिक व्यक्ति होने के नाते, अनुसूचित जाति के किसी सदस्य द्वारा किसी

विधिक व्यक्ति को किया गया विक्रय, जिसकी कोई जाति नहीं है, अधिनियम की धारा 42 द्वारा प्रभावित नहीं है, असमर्थनीय है और उपरोक्त उपबंध की गलत व्याख्या करता है।"

उपरोक्त उपबंध को ध्यान में रखते हुए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सोसाइटी को किया गया विक्रय, जो एक विधिक व्यक्ति है, आरम्भतः ही शून्य है और विधि की दृष्टि से मान्य नहीं है।

23. इस न्यायालय ने *मंचेगौड़ा व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य [(1984) 3 एस. सी. सी. 301]* वाले मामले में कर्नाटक अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (कतिपय भूमि के अंतरण का प्रतिषेध) अधिनियम, 1978 की धारा 3,4 और 5 की विधिमान्यता पर विचार किया है जिसमें अनुदत्त भूमि के अंतरण को प्रतिषिद्ध किया गया है और उसे पुनः प्राप्त करने का उपबंध किया गया है, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किए गए प्रतिषिद्ध संव्यवहार को भी अमान्य किया जा सकता है और धारा 4 और 5 अनुच्छेद 19 (1) (च) का अतिक्रमण नहीं करती है जैसा कि यह 1978 में लोप से पहले थी। न ही यह प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 31 और 31क का उल्लंघन करता है और किसी अंतरिती का कोई संपत्ति का अधिकार नहीं होगा और ऐसी संपत्ति को जब्ती अनुच्छेद 31 या 31क को प्रभावित नहीं करेगी। इस न्यायालय ने यह भी माना कि प्रावधानों का उस उद्देश्य के साथ उचित

संबंध है जिसे प्राप्त करने की मांग की गई है। अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां एक विशिष्ट वर्ग बनाते हैं। अन्य समुदायों को इस प्रावधान से बाहर रखना भेदभाव नहीं है। ऐसे संव्यवहार को शून्य घोषित करने के विधायिका के अधिकार को इस न्यायालय ने निम्नलिखित तरीके से बरकरार रखा हैः

> "12.इस नीति के अनुसरण में, विधायिका निस्संदेह एक अधिनियम पारित करने के लिए सक्षम है जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि ऐसी अनुदत्त भूमि का हस्तांतरण शून्य होगा और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हितों की उचित सुरक्षा और संरक्षण के लिए न केवल निरर्थक होगा, जिनके लाभ के लिए केवल ये भूमि प्रदान की गई थी। ऐसे वैधानिक प्रावधानों की अनुपस्थिति में में भी अनुदान की शर्तों का भंग करते हुए या इस तरह के अनुदान को कवर करने वाले किसी कानून, नियम या विनियम का भंग करते हुए अनुदत्त भूमि का हस्तांतरण स्पष्ट रूप से शून्यकरणीय होगा और कानून के अनुसार शून्यकरणीय हस्तांतरण से बचने के बाद ऐसी दी गई भूमि की बहाली की अनुमति दी जाएगी। कानून की प्रक्रिया के माध्यम से इस तरह के शून्यकरणीय

हस्तांतरण और दी गई भूमि की बहाली से बचने में समय लगना तय है।इस तरह के अनुदान की बहाली के लिए उपयुक्त कानूनी प्रक्रिया के माध्यम से इस तरह के हस्तांतरण से बचने के लिए कार्रवाई करने के हकदार अधिकारियों की ओर से कोई भी उपेक्षा और देरी ऐसे हस्तांतरण से बचने और दी गई भूमि के कब्जे को फिर से शुरू करने के मामले में और बाधाएं हो सकती हैं। लंबे समय तक चलने वाली कानूनी कार्यवाही निश्चित रूप से उन अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के हितों के लिए हानिकारक होगी जिनके लाभ के लिए अनुदत्त भूमि को फिर से बहाल करने का इरादा है। अनुदान की शर्तों या ऐसे अनुदानों को नियंत्रित करने वाले किसी भी कानून, विनियम या नियम के उल्लंघन में अनुदत्त भूमि के हस्तांतरण को कानूनी रूप से टाला जा सकता है और कानून की प्रक्रिया के माध्यम से ऐसी भूमि का कब्जा वापस लिया जा सकता है, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि इस उद्देश्य के लिए विधायिका दीर्घ मुकदमेबाजी के विलंब और उत्पीड़न से बचने और कमजोर समुदायों के सदस्यों को इन दी गई भूमियों

की शीघ्र बहाली के अपने उद्देश्य को आगे बढ़ाने में पूरी तरह से सक्षम है ताकि ऐसी भूमियों के हस्तांतरण के अधिनियमन में निर्धारित करके ऐसी दी गई भूमियों की बहाली के लिए उपयुक्त प्रावधान किया जा सके। अनुदान की शर्तों या किसी विनियम, ऐसे अनुदान को विनियमित करने वाले नियम या कानून के उल्लंघन में शून्य होगा और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप एक उपयुक्त प्रक्रिया प्रदान करने में न्यायालय में लंबे समय तक मुकदमेबाजी के बिना बड़े हितों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को लाभान्वित करना।"

24. मुआवजे के भुगतान के बिना, इस न्यायालय द्वारा भूमि को फिर से बहाल सकता है और यहां तक कि एक मामले में जब अनुदान एक निश्चित अवधि के लिए था, तो भूमि को फिर से बहाल किया जा सकता है। धारा 4 और 5 में निहित प्रावधानों के तहत मुआवजे के बिना भूमि को फिर से बहाल करने के प्रावधानों को बरकरार रखा गया है। *मंचेगौड़ा (उपरोक्त)* में इस न्यायालय ने इस प्रकार निर्धारित किया है:

"19. हमने पहले देखा है कि अनुदत्त की गई भूमि के हस्तांतरण के खिलाफ निषेध के उल्लंघन में

हस्तांतरित की गई भूमि में एक हस्तांतरिती द्वारा प्राप्त किया गया अधिकार एक शून्यकरणीय अधिकार है जो कानून में उचित कार्रवाई के माध्यम से विफल होने के लिए उत्तरदायी है और निषेध की शर्त के उल्लंघन में हस्तांतरित ऐसी अनुदत्त की गई भूमि का कब्जा अनुदाता द्वारा वापस लिया जा सकता है। वह अधिकार या संपत्ति जो एक अंतरिती अनुदत्त की गई भूमि में प्राप्त करता है, एक निष्फल की जाने योग्य अधिकार है और अंतरिती अनुदानकर्ता के कहने पर अपने अधिकार या संपत्ति से वंचित हो सकता है। हमने आगे देखा है कि इस अधिनियम के अधिनियमन और विशेष रूप से धारा 4 और धारा 5 के द्वारा विधानमंडल ऐसी भूमि में लंबी कानूनी कार्रवाई की प्रक्रिया के बिना इस तरह की भूमि में अंतरिती के निष्फल की जाने योग्य अधिकार को पराजित करना चाह रहा है, ताकि इस तरह की अनुदत्त भूमि के वितरण की बहाली मूल अनुदेयी या उनके कानूनी प्रतिनिधियों को और उनकी अनुपस्थिति में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों के अन्य सदस्यों को शीघ्र हो सके। हमारी राय में, अनुदत्त की

गई भूमि में अंतरिती के इस तरह के अधिकार को संपत्ति नहीं माना जा सकता है जैसा कि अनुच्छेद 31 और 31 ए में अनुध्यात है।इस तरह के हस्तांतरण से संबंधित निषेध की स्थिति के उल्लंघन में ऐसी भूमि के हस्तांतरण पर दी गई भूमि में अंतरिती के अधिकार की प्रकृति, ऐसे अनुदान का उद्देश्य और उसकी शर्तें, ऐसे अनुदान और वस्तु को नियंत्रित करने वाला कानून और वस्तु हमारे समुदाय के कमजोर वर्गों के लाभ के लिए अधिनियमित वर्तमान अधिनियम की योजना स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि इस मामले में ऐसे निषेध या संपत्ति का कोई वंचन नहीं है जो संविधान के अनुच्छेद 31 और 31क के प्रावधानों को आकर्षित कर सके।

20. *अमर सिंह बनाम अभिरक्षक, विस्थापित संपत्ति, पंजाब (1957) एस. सी. आर. 801* के मामले में, इस न्यायालय ने विस्थापित संपत्ति प्रशासन अधिनियम, 1930 (1950 का 31) के उपबंधों और किसी अर्ध स्थायी आवंटी को आबंटित संपत्ति पर अधिकार की प्रकृति पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि किसी अर्ध स्थायी आवंटी के हित संविधान के

अनुच्छेद 19 (1) (च), 31 (1) और 31 (2) के अर्थ में संपत्ति का गठन नहीं करते।

इस न्यायालय ने पृष्ठ 834 पर यह मत व्यक्त कियाः

"याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने जोर देकर आग्रह किया है कि अर्द्ध-स्थायी आवंटन योजना के तहत आवंटी प्रासंगिक अधिसूचना की सीमाओं के भीतर कब्जा करने का हकदार है और यह कि कब्जा करने का ऐसा अधिकार स्वयं 'संपत्ति'है। एक मायने में ऐसा हो सकता है।लेकिन यह इस सवाल को प्रभावित नहीं करता है कि क्या यह वही संपत्ति है जिसको संविधान के तहत मौलिक अधिकारों का संरक्षण प्राप्त है।यदि ऐसी भूमि में अर्द्ध-स्थायी आवंटी के अधिकारों का समूह, जो ऐसी भूमि में हित का गठन करता है, मूल अधिकार के संरक्षण का हकदार संपत्ति नहीं है, तो ऐसे हित के आधार पर भूमि का केवल कब्जा किसी उच्च स्तर पर नहीं है।"

25. वर्तमान मामले में, संव्यवहार आरम्भतः ही शून्य है जो अपने प्रारंभ से ही सही है और राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 में प्रयुक्त विशिष्ट भाषा के आधार पर इच्छानुसार निरर्थक नहीं है। इस बात की घोषणा की जाती है कि संपत्ति की बिक्री का ऐसा संव्यवहार शून्य होगा।

चूंकि यह प्रावधान घोषणात्मक है, इसलिए प्रतिबंधित संव्यवहार को अमान्य घोषित करने के लिए किसी और घोषणा की आवश्यकता नहीं है। ऐसे संव्यवहार के आधार पर किसी व्यक्ति को कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। जो व्यक्ति इसे खरीदने के लिए अनुबंध करता है, वह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के कमजोर वर्गों की सुरक्षा के लिए बनाए गए प्रावधान के परिणामों से अवगत होता है।मुआवजे का दावा करने का अधिकार भूमि के अधिकार, स्वामित्व या हित से प्राप्त होता है। जब भूमि में ऐसा अधिकार, स्वामित्व या हित गैर-अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए अपरिहार्य है, जाहिर है कि सोसाइटी द्वारा खातेदारों के साथ किए गए समझौते स्पष्ट रूप से शून्य हैं और समझौते के आधार पर प्राप्त डिक्री राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के आदेश का उल्लंघन करती है और एक शून्यता है। सार्वजनिक नीति के विरोध में इस तरह के एक निषिद्ध संव्यवहार को लागू नहीं किया जा सकता है। कोई अन्य व्याख्या संविधान के अनुच्छेद 46 के अधिदेश के अनुसार धारा 42 के तहत भारत के संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 की अनुसूचियों में शामिल गरीब जातियों और दलित व्यक्तियों के पक्ष में की गई है।

26. *मध्य प्रदेश राज्य बनाम बाबू लाल व अन्य [1977 (2) एस. सी. सी. 435]* में मध्य प्रदेश भूमि राजस्व संहिता, 1959 की धारा 165 (6) में अंतर्विष्ट उपबंध इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया है। उच्च न्यायालय ने राज्य को डिक्री को बातिल और शून्य घोषित करने के लिए

मुकदमा दायर करने का निर्देश दिया। निर्णय को रद्द कर दिया गया।यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मामला कानून के उल्लंघन का एक स्पष्ट उदाहरण था, क्योंकि उच्च न्यायालय ने रिट जारी न करके गलती की थी। उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द कर दिया गया था। वह अंतरण, जो किसी जनजाति से संबंधित भुस्वामी के अधिकार को अंतरित करने वाली धारा 165 (6) के परंतुक का उल्लंघन था, अपास्त कर दिया गया।

27. इस न्यायालय ने *लिंकल गमांगो व अन्य बनाम दयानिधि जेना और अन्य [ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 3457]* वाले मामले के उपबंधों पर विचार करते हुए उड़ीसा अनुसूचित क्षेत्र अचल संपत्ति का हस्तांतरण (अनुसूचित जनजातियों द्वारा) विनियम, 1956, जिसमें किसी आदिवासी द्वारा किसी गैर-आदिवासी को ग्रामीण संपत्ति के हस्तांतरण को प्रतिषिद्ध किया गया था, ऐसे लेन-देन को अकृत और शून्य घोषित किया। इस न्यायालय ने *अमरेन्द्र प्रताप सिंह बनाम तेज बहादुर प्रजापति व अन्य [ए आई आर 2004 एस सी 3782]* में निर्णय का भरोसा करते हुए यह निर्धारित किया है कि ऐसी अहस्तांतरणीय संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जे द्वारा कोई अधिकार अर्जित नहीं किया जा सकता है। प्रतिकूल कब्ज़ा एक हस्तांतरणीय अधिकार पर संचालित होता है। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि गैर-आदिवासी प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अधिकार या हक प्राप्त नहीं करेंगे। प्रासंगिक चर्चा का उद्धरण नीचे दिया गया हैः

"7. हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए ये दोनों कारण टिकाऊ नहीं हैं।पहले दूसरे बिंदु पर आते हैं, हम पाते हैं कि इस मुद्दे पर सीधे इस न्यायालय का एक निर्णय है। यह ए आई आर 2004 एससी 3782, अमरेंद्र प्रताप सिंह बनाम तेज बहादुर प्रजापति व अन्य में बताया गया है। मामला आदिवासी क्षेत्र में आने वाली अनुसूचित जनजाति की भूमि के हस्तानांतरण से संबंधित है।यह मामला उड़ीसा अनुसूचित क्षेत्र अचल संपत्ति अंतरण (अनुसूचित जनजातियों द्वारा) विनियम, 1956 के विनियम 2,3 और 7-घ द्वारा शासित था अर्थात वही विनियम जो इस मामले को भी नियंत्रित करते हैं।इसमें प्रतिकूल कब्जे द्वारा अधिकार के अधिग्रहण के बारे में भी सवाल शामिल था।इस मामले पर विस्तार से विचार करते हुए, उपर्युक्त विनियम के प्रावधानों के आलोक में, इस न्यायालय ने पाया कि एक प्रश्न जो विचार के लिए आता है वह यह था कि "क्या आदिवासी जनजाति के सदस्य की संपत्ति पर एक गैर-आदिवासी द्वारा प्रतिकूल कब्जे का अधिकार प्राप्त किया जा सकता है?"

(निर्णय का पैरा 14) उपरोक्त प्रश्न के संदर्भ में, इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 23 में निम्नानुसार अवलोकन किया गया:

> ".....संपत्ति में अधिकार ऐसा होना चाहिए जो हस्तांतरणीय हो और प्रतिद्वंद्वी द्वारा अर्जित किए जाने में सक्षम हो। प्रतिकूल कब्ज़ा एक हस्तांतरणीय अधिकार पर संचालित होता है विधि के प्रवर्तन द्वारा अधिकार अलग-थलग पड़ जाता है, क्योंकि यह स्वेच्छा से अलग-थलग किए जाने में सक्षम था और इसे सही दावेदार की ओर से व्यतिक्रम और निष्क्रियता से प्रतिकूल कब्जे के सिद्धांत द्वारा पहचाने जाने की कोशिश की जाती है।
>
> इस न्यायालय ने तब दो निर्णयों पर ध्यान दिया था, जिनमें से एक प्रिवी काउंसिल ने ए आई आर 1923 पी सी 205 *माधवराव महिला सौंदलगेकर व अन्य बनाम रघुनाथ वेंकटेश देशपांडे व अन्य, और करीमुल्लाखन पुत्र मोहम्मद इशाकखान व अन्य बनाम भानुप्रतापसिंह* में इनाम की जमीनों पर प्रतिकूल कब्जे का स्वामित्व धारण करते हुए, वतन भूमि और डेब्यूटर अधिग्रहण करने में असमर्थ थे क्योंकि ऐसी भूमि का हस्तांतरण राज्य के हित में निषिद्ध था।हम आगे पाते

हैं कि माधिया नायक (उपरोक्त) के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा जिस निर्णय पर भरोसा किया गया था वह इस न्यायालय के समक्ष संदर्भित किया गया था और यह देखा गया है कि क्या एक गैर-जनजातीय व्यक्ति किसी जनजातीय क्षेत्र में स्थित जनजातीय भूमि पर प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व के अधिग्रहण को विहित करना शुरू कर सकता है, न तो वह मुद्दा उठाया गया था और न ही यह मुद्दा मधिया नायक के मामले में उठा था। यह भी देखा गया है कि विनियमों की धारा 7-घ के प्रावधानों को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाना चाहिए कि किसी जनजातीय व्यक्ति द्वारा किसी अन्य जनजातीय व्यक्ति की अचल संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जा करके अधिकार और स्वामित्व के अधिग्रहण का दावा किया जाता है, लेकिन जहां नहीं प्रश्न एक जनजातीय क्षेत्र में एक जनजातीय व्यक्ति निवास से संबंधित भूमि पर प्रतिकूल कब्जे से गैर-जनजातीय व्यक्ति दावा करने के संबंध में है।अतः, *अमरेन्द्र प्रताप सिंह (पूर्वोक्त)*के मामले में विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि एक गैर-जनजातीय व्यक्ति प्रतिकूल कब्जे के आधार पर

अधिकार और स्वामित्व अर्जित नहीं करेगा। इसलिए, अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त करने का दूसरा आधार समाप्त हो जाता है। इसलिए, विवादित भूमि पर प्रतिवादी के कब्जे और उनके पक्ष में प्रविष्टियों के बारे में अन्य तथ्यात्मक पहलू भी बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो सकते हैं, किसी भी मामले में, मामले के अन्य तथ्यों और परिस्थितियों के रोशनी में इस पहलू पर नए सिरे से विचार किया जाना चाहिए।"

28. इस न्यायालय ने *अमरेन्द्र प्रताप (पूर्वोक्त)* में यह अभिनिर्धारित किया है कि 'अंतरण'पद में संपत्ति से संबंधित कोई भी कार्य सम्मिलित होगा जब 'सौदा'शब्द को अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है। सुरक्षित मार्गदर्शक के रूप में शब्दकोश का अर्थ अधिनियम के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बढ़ाया जा सकता है। लेन-देन या एक आदिवासी जनजाति के स्वामित्व को स्थानांतरित करने के लिए हस्तांतरणीय संपत्ति से निपटने और गैर-आदिवासी में इसे निहित करने को अचल संपत्ति के हस्तांतरण के रूप में माना गया था।'अचल संपत्ति के हस्तांतरण'अभिव्यक्ति के अर्थ को विस्तारित करने में ऐसी संपत्ति से निपटना शामिल होगा जो अचल संपत्ति में हक के हस्तांतरण के कारण या परिणाम का प्रभाव होगा। जब कानून का उद्देश्य किसी अपकार को रोकना और समाज के कमजोर वर्गों को सुरक्षा प्रदान करना है, तो अदालत

शब्द पर एक विस्तारित अर्थ, यहां तक कि एक विस्तारित अर्थ रखने में संकोच नहीं करेगी, अगर ऐसा करने में क़ानून उस वस्तु को प्राप्त करने में सफल होगा जिसे प्राप्त करने की मांग की गई हैजब अधिनियम का आशय यह है कि संपत्ति जनजातीय के संबंध में इसके प्रचालन में इस प्रकार सीमित रहनी चाहिए कि अचल संपत्ति एक जनजातीय व्यक्ति को आ सकती है, लेकिन अचल संपत्ति में स्वामित्व किसी गैर-जनजातीय व्यक्ति में निहित नहीं होना है, तो इस आशय का आशय कानून के सुरक्षात्मक शाखा द्वारा ध्यान रखा जाना है और अनैतिक उपकरणों के शिकार होने से बचाया जाना है, और इस न्यायालय ने किसी भी लेन-देन या अचल संपत्ति से निपटने का निष्कर्ष निकाला है जिसका प्रभाव किसी जनजाति में ऐसी संपत्ति का स्वामित्व, कब्जा या अधिकार समाप्त करना होगा और इसे गैर-जन जातीय में निहित करना 'अचल संपत्ति के हस्तांतरण'के अर्थ में शामिल किया जाएगा।

29. सोसायटी की ओर से यह भी कहा गया कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद कोई खरीदार अधिसूचना की वैधता पर सवाल नहीं उठा सकता है, लेकिन मुआवजे के भुगतान के लिए दावा कर सकता है। *यू. पी. जल निगम, लखनऊ कि ओर से इसके अध्यक्ष व अन्य बनाम कालरा प्रॉपर्टीज (पी) लिमिटेड, लखनऊ व अन्य [1996 (3) एससीसी 124]* पर भरोसा किया गया। जब हम पूर्वोक्त उक्ति पर विचार करते हैं, तो इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया है कि धारा 4(1) के तहत अधिसूचना प्रकाशित होने के बाद, भूमि की बिक्री राज्य के खिलाफ शून्य है और मैसर्स कालरा प्रॉपर्टीज ने भूमि में कोई अधिकार, स्वामित्व या हित अर्जित नहीं किया है और यह एक स्थापित कानून है कि वह धारा 6 के तहत घोषणा के प्रकाशन से पहले भूमि का कब्जा लेने की अधिसूचना की वैधता या नियमितता को चुनौती नहीं दे सकता है। मैसर्स कालरा प्रॉपर्टीज ने हालांकि भूमि का कोई मालिकाना हक हासिल नहीं किया है, लेकिन वह मालिक की जगह लेने और मुआवजे का दावा करने की हकदार होगी। हालांकि, मौजूदा मामले में, यह एक लेन-देन था जो न केवल राज्य के विरुद्ध शून्य था बल्कि विक्रेता और क्रेता के बीच उस विषय में भी शून्य था।

30. ऐसे लेन-देन के आधार पर प्रतिकर का दावा करने के अधिकार को सोसाइटी द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि इससे अधिनियम के मूल उद्देश्य और अनुच्छेद 341 और 342 की अनुसूचियों के संरक्षणात्मक छत्र के तहत ऐसी जातियों और जनजातियों सहित संवैधानिक प्रावधानों को निष्फल किया जा सकता है, उन्हें उनके द्वारा कानूनी रूप से धारित भूमि का प्रतिकर प्राप्त करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है और उन्हें भूमि पर कब्जा करने वालों के अनैतिक युक्तियों का शिकार नहीं बनाया जा सकता है।मुआवजे का दावा करने का अधिकार भूमि में अधिकार, स्वामित्व या हित के आधार पर है, जिसे धारा 42 के अधिदेश के आधार पर सोसायटी जैसे कानूनी व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं किया जा

सकता है। यह सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य है कि लाभ सीधे ऐसे व्यक्तियों तक पहुंचे और मध्यस्थों द्वारा हड़प न लिया जाए क्योंकि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की संपत्ति रखने के अधिकार के संरक्षण का उद्देश्य समाज को मुआवजे का वितरण करके नहीं छीना जा सकता है। अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के व्यक्ति, जैसा भी मामला हो, मुआवजे के वितरण के लिए एकमात्र सही दावेदार हैं और इस तरह के अधिकार को शून्य लेनदेन से छेड़छाड़ नहीं किया जा सकता है क्योंकि मुआवजे का उद्देश्य अनुसूचित जातियों या जनजातियों का पुनर्स्थापन है।

31. सोसायटी द्वारा भरोसा किया गया निर्णय *वी.चंद्रशेखरन व अन्य बनाम प्रशासनिक अधिकारी व अन्य। [2012 (12) एस सी सी 133]* जिसमें इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

> "15. अधिनियम की धारा 4 के तहत जारी की जा रही अधिसूचना के बाद भूमि खरीदने वाले व्यक्ति द्वारा रिट याचिकाओं की संधारणीयता के मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार विचार किया गया है। *पंडित लीला राम बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 2112*में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई भी व्यक्ति जो धारा 4 की अधिसूचना जारी किए जाने के बाद भूमि का सौदा करता है, वह

अपने जोखिम पर ऐसा करता है। *स्नेह प्रभा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 540*में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 4 की अधिसूचना जनता को व्यापक रूप से यह सूचना देती है कि जिस भूमि के संबंध में इसे जारी किया गया है, उसकी सार्वजनिक प्रयोजन के लिए आवश्यकता है, और यह आगे इंगित करता है "अधिग्रहीत भूमि को भारित करने के लिए किसी के लिए एक बाधा।"होगी। इसके बाद हस्तांतरण राज्य या लाभार्थी को अधिग्रहण के लिए बाध्य नहीं करता है। क्रेता केवल क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का हकदार है। उक्त मामले का निर्णय करते समय, इस न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय *भारत संघ बनाम श्री शिव कुमार भार्गव व अन्य: जे टी (1995) 6 एससी 274*, पर भरोसा रखा था।

16. इसी प्रकार, *उत्तर प्रदेश जल निगम बनाम कालरा प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड, ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1170*में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी भूमि के संबंध में धारा 4 की अधिसूचना के प्रकाशन के पश्चात् भूमि का क्रय राज्य के विरुद्ध शून्य

है और अधिक से अधिक क्रेता प्रतिकर में हितबद्ध व्यक्ति हो सकता है क्योंकि वह पूर्ववर्ती स्वामी के स्थान पर आता है और इसलिए केवल प्रतिकर का दावा कर सकता है। (यह भी देखें: *स्टार वायर (इंडिया) लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य व अन्य)*

17. *अजय किशन सिंघल बनाम भारत संघ ए आई आर 1996 एस सी 2677; महावीर व अन्य बनाम ग्रामीण संस्थान, अमरावती व अन्य (1995) 5 एस सी सी 335; ज्ञान चंद बनाम गोपाला व अन्य (1995) 2 एस सी सी 528; और मीरा साहनी बनाम उपराज्यपाल दिल्ली व अन्य। (2008) 9 एस सी सी 177*में, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि, जो व्यक्ति इसके संबंध में धारा 4 अधिसूचना के प्रकाशन के बाद भूमि खरीदता है, वह इस कारण से कार्यवाही को चुनौती देने का हकदार नहीं है कि उसका स्वामित्व शून्य है और वह विक्रेता के स्वामित्व के आधार पर अधिक से अधिक मुआवजे का दावा कर सकता है। इसे ध्यान में रखते हुए, धारा 4 की अधिसूचना जारी करने के बाद भूमि की बिक्री शून्य है और खरीदार अधिग्रहण प्रक्रिया को चुनौती नहीं दे

सकता है। (यह भी देखें: टीका राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2009) 10 एस सी सी 689)

18. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, इस मुद्दे पर कानून को इस आशय से संक्षेपित किया जा सकता है कि कोई व्यक्ति जो इसके संबंध में धारा 4 की अधिसूचना जारी होने के बाद भूमि खरीदता है, वह किसी भी आधार पर अधिग्रहण की कार्यवाही की वैधता को चुनौती देने के लिए सक्षम नहीं है, क्योंकि उसके पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख उसे कोई हक नहीं देता है और अधिकतम वह अपने विक्रेता के स्वामित्व के आधार पर मुआवजे का दावा कर सकता है।"

32. *दोसिबाई नानाभोय जीजीभॉय बनाम पी. एम. भरूचा [1958 (60) बोम. एल. आर. 1208]* पर भरोसा रखा गया है जिससे कि यह प्रतिवाद किया जा सके कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 9 के अधीन भूमि में 'हितबद्ध व्यक्ति'में वह व्यक्ति शामिल होगा जो भूमि के अधिग्रहण के लिए प्रतिकर में हित का दावा करता है और धारा 9 के अधीन अनुध्यात हित भूमि में विधिक या स्वामित्व संपदा या हित तक सीमित नहीं है किंतु ऐसा हित जो विभाजन के दावे को बनाए रखेगा, भूमि का स्वामी है। हमारी राय में, निर्णय का कोई प्रयोजन नहीं है। राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के अनुसार तत्काल लेन-देन शून्य है और संपत्ति

गैर-अनुसूचित जाति के लिए अपरिहार्य होने के कारण, स्पष्ट रूप से, तार्किक निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि सोसायटी द्वारा मुआवजे के विभाजन में कोई अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता है।

33. हि*मालयन टाइल्स एंड मार्बल (प्रा.) लिमिटेड बनाम फ्रांसिस विक्टर कॉटिन्हो (मृत) के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा [1980 (3) एस सी सी 223)*, यह निर्धारित किया गया था कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 18 के अर्थ में 'रुचि रखने वाले व्यक्ति'में एक निकाय, स्थानीय प्राधिकारी, या एक कंपनी शामिल होगी जिसके लाभ के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया है जिस कंपनी के लाभ के लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया था, वह मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थी, उसे 'हितबद्ध व्यक्ति'माना गया था। यह निर्णय सोसाइटी द्वारा समर्थित उद्देश्य के लिए कोई मदद नहीं करता है और उस पर निर्भरता गलत है।

34. सोसाइटी की ओर से यह पुरजोर आग्रह किया गया कि राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 175 के प्रावधानों का सहारा लेने में विफल रहने के कारण, खातेदारों ने सोसाइटी द्वारा अर्जित स्वामित्व की अनदेखी करने के लिए अपना उपचार खो दिया है, जिसे सिविल न्यायालय द्वारा पारित समझौता डिक्रियों द्वारा परिपूर्ण किया गया है।राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 175 नीचे उद्रत की गई हैः

> "धारा 175 - अवैध हस्तांतरण या उप-किरायेदारी के
>
> लिए बेदखली

[(1)] यदि एक किरायेदार हस्तांतरण या उप-किराए पर देता है, या एक लिखत को स्थानांतरित करने या उप-किराये पर देने के लिए निष्पादित करता है, तो उसकी पूरी या किसी भी हिस्से को छोड़कर अन्यथा इस अधिनियम के प्रावधान और अंतरिती या उप-पट्टेदार या इस तरह के हस्तांतरण या उप-पट्टे के अनुसरण में कथित हिस्से, दोनों किरायेदार और कोई भी व्यक्ति जो इस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं या इस प्रकार धारित या किसी भी हिस्से के कब्जे में हो सकते हैं जोत, भूमि धारक के आवेदन पर, इस प्रकार हस्तांतरित या उप-किराए पर या स्थानांतरित किए जाने के लिए कथित या उप-किराए पर दिए गए क्षेत्र से बेदखल करने के लिए उत्तरदायी होगा।

(2) इस खंड के अधीन प्रत्येक आवेदन में, यथास्थिति, अंतरिती या उप-किरायेदार या तथाकथित अंतरिती या उप-किरायेदार को एक पक्षकार के रूप में शामिल किया जाएगा।

(3) इस खंड के अधीन किए गए आवेदन पर, न्यायालय विरोधी पक्षकार को ऐसे समय के भीतर, जो उसमें विनिर्दिष्ट किया जाए, उपसंजात होने के लिए

नोटिस जारी करेगा और हेतुक दर्शित करे कि उसे इस प्रकार स्थानांतरित या उप-किराए पर दिए गए या स्थानांतरित किए जाने वाले या उप-किराये पर दिए गए क्षेत्र से क्यों नहीं बेदखल कर दिया जाए।]

(4). यदि नोटिस में निर्दिष्ट समय के भीतर उपस्थिति की जाती है और बेदखली के दायित्व का विरोध किया जाता है, तो न्यायालय उचित न्यायालय फीस के संदाय पर आवेदन को मुकदमा मानेगा और मामले को मुकदमा के रूप में आगे बढ़ाएगाः

(4क) परन्तु यह कि सीधे राज्य सरकार से धारित भूमि के सम्बन्ध में तहसीलदार द्वारा आवेदन दिये जाने की स्थिति में कोई न्यायालय शुल्क देय नहीं होगा।

1 [4 (क) उपधारा (4) में इसके विपरीत किसी बात के होते हुए भी, यदि आवेदन धारा 42 में अंतर्विष्ट उपबंध या धारा 43 की उपधारा (2) या धारा 49क के परंतुक के उल्लंघन के संबंध में है, तो न्यायालय, पक्षकारों को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात्, संक्षिप्त रीति में जांच पूरी करेगा और आदेश जारी करेगा, जहां तक व्यावहारिक हो सके, उसके

समक्ष गैर-आवेदक की हाजिरी की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर उक्त उपबंधों के उल्लंघन में किराएदार और उसके अंतरिती या उप-पट्टेदार को उस क्षेत्र से बेदखली का निर्देश देगा।

(5) यदि ऐसी कोई उपस्थिति नहीं की जाती है या यदि उपस्थिति की जाती है, लेकिन बेदखली के दायित्व का विरोध नहीं किया जाता है, तो अदालत आवेदन पर आदेश पारित करेगी जैसा वह उचित समझे।"

35. इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 175 उक्त अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में अवैध हस्तांतरण या उप-किराएदारी के लिए बेदखली का प्रावधान करती है।हालांकि, उपरोक्त प्रावधान के तहत मौजूदा मामले में बेदखली की कार्यवाही का कोई सवाल ही नहीं है, जो कि व्यर्थ में प्रयोग किया गया होता क्योंकि माना जाता है कि 22.5.1982 को राज्य द्वारा कब्जा पहले ही ले लिया गया है। इसके अलावा, लेन-देन की शून्यता को इन कार्यवाहियों में भी देखा जा सकता है जब मुआवजे का दावा करने का अधिकार सोसायटी द्वारा दावा किया जाता है और मौजूदा मामले के तथ्यात्मक पहलू से यह स्पष्ट है कि खातेदार अनुसूचित जाति के हैं और उन्हें मुआवजे का दावा करने के अपने अधिकार से वंचित नहीं किया जा

सकता है, धारा 42 के आशय को इन कार्यवाहियों में लागू किया जा सकता है।

36. सोसाइटी की ओर से, इस न्यायालय के एक *निर्णय नाथू राम (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम राजस्थान राज्य व अन्य [2004 (13) एससीसी 585]* पर भरोसा किया गया है। जिसमें इस न्यायालय ने राजस्थान काश्तकारी अधिनियम के प्रावधानों पर विचार किया है, जैसा कि यह अधिनियम में इसके संशोधन से पहले था। परिसीमा अंतरण की तिथि के 12 वर्ष थी। संशोधन के बाद यह 30 वर्ष है। यह भी निर्धारित किया गया था कि हालांकि स्थानांतरण अपने आप में शून्य था लेकिन परिसीमा की अवधि लागू होगी। वर्तमान मामले में, राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 175 के तहत प्रक्रिया शुरू करने का कोई सवाल ही नहीं उठता है क्योंकि वर्ष 1986 में सिविल न्यायालय द्वारा डिक्री पारित करने से पहले, राज्य द्वारा परिसीमा समाप्त होने से बहुत पहले मई, 1982 में कब्जा लिया गया था। इस प्रकार, बेदखली की कार्यवाहियों की संस्थापना की आवश्यकता नहीं थी।

37. *राम करण (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि व अन्य बनाम राजस्थान राज्य व अन्य [2014 (8) एससीसी 282]*के मामले मे, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया गया है कि राजस्थान किरायेदारी अधिनियम की धारा 42 के आधार पर अनुसूचित जाति के एक सदस्य द्वारा एक ऐसे व्यक्ति को जो अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं है, को जमीन का

हस्तांतरण निषिद्ध और अप्रवर्तनीय है। ऐसा कोई संव्यवहार संविदा अधिनियम की धारा 23 के अधीन भी विधिविरुद्ध है और संविदा अधिनियम की धारा 2 (छ) के अधीन कोई करार या ऐसा अंतरण शून्य होगा। इस न्यायालय ने धारा 175 के तहत बेदखली दायर करने की सीमा पर भी विचार किया। 31 वर्षों के बाद दायर की गई कार्यवाही को परिसीमा द्वारा वर्जित माना गया था।निर्णय उपरोक्त कारणों से अलग है।

38. इसके बाद सोसायटी की ओर से तर्क दिया गया कि सोसायटी ने एक अधिकार अर्जित कर लिया है और संपत्ति धारण करने का ऐसा अधिकार कानून के प्रावधानों के अन्यथा छीना नहीं जा सकता है। यदि संपत्ति रखने के श्रेष्ठ अधिकार का दावा किया जाता है, तो उचित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिए। *लछमन दास बनाम जगत राम व अन्य [2007 (10) एससीसी 448]*पर भरोसा किया गया है।, जिसमें इस न्यायालय ने इस प्रकार निर्धारित किया है:

> “16. इस तरह के नोटिस के बावजूद, अपीलकर्ता को पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया था। इसलिए, इस तरह के मामले में उसे सुनवाई का अवसर दिए बिना, वाद-ग्रस्त भूमि पर उसके स्वामित्व और और कब्जे का अधिकार नहीं छीना जा सकता था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 300क के अनुसार संपत्ति रखना एक संवैधानिक अधिकार है। यह मानव

अधिकार भी है। इसलिए संपत्ति रखने का अधिकार किसी विधि के प्रावधानों के अनुसार ही छीना जा सकता है। यदि संपत्ति रखने के किसी वरिष्ठ अधिकार का दावा किया जाता है, तो प्रक्रियाओं का पालन किया जाना चाहिए। इसलिए पूर्ववर्ती शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए। वैसे भी, पूर्व-तैयारी का अधिकार एक बहुत कमजोर अधिकार है, हालांकि यह एक विधिक अधिकार है। न्यायालय को, किसी पूर्व-नियोजक के पक्ष में राहत प्रदान करते समय, अधिकार के चरित्र के साथ-साथ उसके स्वामी के संवैधानिक और मानव अधिकार के बारे में ध्यान रखना चाहिए।"

39. *तुकाराम काना जोशी व अन्य की ओर से मुख्तारनामा धारक बनाम महाराष्ट्र औद्योगिक विकास निगम और अन्य [2013 (1) एससीसी 353]*पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह इस प्रकार निर्धारित किया गया हैः

"8. अपीलकर्ताओं को 1964 में उनकी अचल संपत्ति से वंचित कर दिया गया था, जब संविधान का अनुच्छेद 31 अभी भी बरकरार था और संपत्ति का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत मौलिक अधिकारों का एक हिस्सा था।यह उल्लेख करना

प्रासंगिक है कि संपत्ति के अधिकार को एक मौलिक अधिकार के रूप में छिनने के बाद भी, किसी नागरिक की संपत्ति को कब्जे में लेना या अर्जित करना निश्चित रूप से वंचन के बराबर है और ऐसा वंचन केवल कानून के अनुसार ही हो सकता है, जैसा कि उक्त शब्द का विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 300-क में उपयोग किया गया है। ऐसा वंचना केवल विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का प्रयोग करके ही किया जा सकता है।ऐसा कार्यकारी अधिदेश या आदेश या प्रशासन की मनमानी के माध्यम से नहीं किया जा सकता है जीलुभाई नानभाई खाचर, वगैरह बनाम गुजरात राज्य और अन्य ए. आई. आर. 1995 एस. सी. *142*में यह निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया हैः

"दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 300-क केवल राज्य की शक्ति को सीमित करता है कि किसी भी व्यक्ति को कानून के प्राधिकार के बिना उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। कानून की समुचित मंजूरी के बिना कोई वंचना नहीं होती है। किसी अन्य तरीके से वंचना, अनुच्छेद 300-क के तहत अधिग्रहण या कब्ज़ा नहीं

है। दूसरे शब्दों में, यदि कोई कानून नहीं है, तो कोई वंचना नहीं होगी।"

40. *राजेन्द्र नगर आदर्श गृह निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड बनाम राजस्थान राज्य व अन्य [2013 (11) एससीसी 1] और मैथ्यू वर्गीज बनाम एम. अमृथा कुमार व अन्य [2014 (5) एससीसी 610]* में, समान प्रभाव के रूप में अवलोकन किए गए थे।

41. जब हम पूर्वोक्त तर्क पर विचार करते हैं, तो यह स्पष्ट है कि संपत्ति धारण करने का अधिकार अधिनियम के उपबंधों के अनुसार के सिवाय छीना नहीं जा सकता है, लेकिन वर्तमान मामले में, हमारा यह विचार है कि संपत्ति धारण करने का अधिकार, यद्यपि यह सोसाइटी द्वारा अर्जित नहीं किया गया था, तो अतिक्रमण आरम्भतः ही शून्य और अकृत था। दूसरी ओर, राज्य सरकार द्वारा भूमि का अधिग्रहण कर लिया गया है और यहां तक कि उनकी आपत्तियों को खारिज करते हुए 30.11.1982 को पारित अधिनिर्णय में सोसाइटी को मुआवजे का दावा करने के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया था। धारा 175 का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं थी जैसा कि हमारे द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था दिनांक 30.11.1982 के अधिनिर्णय को ध्यान में रखते हुए सोसायटी की हकदारी का प्रश्न मामले में शामिल है जिसमें सोसायटी के मुआवजे का दावा करने का अधिकार खारिज कर दिया गया है। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि संपत्ति रखने के अधिकार के संबंध में पूर्वोक्त मामलों में

इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है, जिसे विधि के प्रावधानों के अलावा छीना नहीं जा सकता है।

42. वर्तमान मामले में, भूमि के आवंटन और मुआवजे की मात्रा पर विचार करने के निर्देश के प्रश्न पर आते हुए, संदर्भ न्यायालय ने मुआवजे का निर्धारण 260 रुपये प्रति वर्ग वर्ष पर किया था जबकि उच्च न्यायालय ने इसे 100 रुपये प्रति वर्ग वर्ष पर निर्धारित किया है और खण्ड पीठ ने इसके अलावा राज्य सरकार को राज्य सरकार द्वारा जारी 27.10.2005 के परिपत्र और *श्रीमती रत्नी देवी अन्य राजस्थान राज्य और अन्य-खण्डपीठ विशेष अपील संख्या 697/1995*में अपने निर्णय दिनांक 12.4.2007 को ध्यान में रखते हुए सोसायटी को विकसित भूमि के 25% आवंटन के लिए प्रार्थना पर विचार करने का निर्देश देने का साहस किया है।

सबसे पहले, हम *श्रीमती रत्नी देवी (पूर्वोक्त)*के मामले में पारित आदेश के संदर्भ में विकसित भूमि के 25% के आवंटन के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश की वैधता के सवाल को उठाते हैं।

43. जब हम दिनांक 27.10.2005 के परिपत्र पर विचार करते हैं, तो राज्य सरकार ने प्रचलित योजना पर विचार किया जिसमें खातेदार अपनी भूमि को मुआवजे के बिना 'आत्मसमर्पण'कर सकते हैं और इसके बदले में विकसित आवासीय क्षेत्र का 25% प्राप्त कर सकते हैं। परिपत्र के पैरा 1 और 4 प्रासंगिक हैं और नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"1. खातेदार द्वारा भूमि का समर्पण करने पर भूमि अधिग्रहण के मामलों में उक्त व्यक्ति, जिससे भूमि अधिग्रहीत की गयी है, को अधिकतम 20 प्रतिशत आवासीय एवं 5 प्रतिशत व्यवसायिक भूमि का अधिकार होगा।लेकिन खातेदार के लिए किसी अन्य व्यक्ति को भूमि आवंटित नहीं की जाएगी, चाहे वह उसके द्वारा नामित ही क्यों न हो।

.....

4. ये प्रावधान केवल भविष्य में अधिग्रहण के मामले में ही लागू होंगे। ये प्रावधान विशेष रूप से लागू होंगे, जहां भूमि अधिग्रहण अधिकारी पहले ही अधिनिर्णय की घोषणा कर चुके हैं और मुआवजे की राशि का भुगतान कर दिया गया है/न्यायालय में जमा कर दिया गया है या अधिनिर्णयमें 15 प्रतिशत भूमि आवंटित करने की अनुमति दे दी गई है।"

44. पैरा 1 से यह स्पष्ट है कि परिपत्र भूमि अधिग्रहण के मामले में लागू होता है जब खातेदारों ने अपनी भूमि का समर्पण किया था।

45. परिपत्र का पैरा 4 यह स्पष्ट करता है कि भविष्य के अधिग्रहण के मामले में प्रावधान लागू होंगे और जहां भूमि अधिग्रहण अधिकारी पहले ही अधिनिर्णय पारित कर चुके हैं वहां प्रावधान लागू नहीं होंगे।

46. वर्तमान मामले में, यहां तक कि प्रचलित निर्देशों को भी संशोधित किया गया है, जो विकसित भूमि पर दावा करने के लिए सोसायटी या खातेदारों को कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है। यह भूमि के समर्पण का मामला नहीं था; इस प्रकार परिपत्र के प्रावधानों को लागू करने का कोई सवाल ही नहीं था क्योंकि परिपत्र भविष्य के अधिग्रहण के लिए दिशानिर्देशों के रूप में था जहां खातेदारों ने अपनी भूमि सौंप दी थी और अधिनिर्णय पारित नहीं किया गया था। उपर्युक्त कारणों से, खण्ड पीठ के समक्ष अपीलीय चरण में उपर्युक्त परिपत्र को सोसाइटी द्वारा सेवा में नहीं डाला जा सकता था। खंडपीठ ने उपर्युक्त निर्देश जारी करते हुए कानूनी रूप से गंभीर गलती की है जो पूरी तरह से अनुचित और अनावश्यक थी।

47. जब हम *श्रीमती रत्नी देवी (पूर्वोक्त)* के निर्णय पर विचार करते हैं, तो यह जयपुर विकास प्राधिकरण की ओर से पेश हुए वकील द्वारा दी गई रियायत पर आधारित था। खण्ड पीठ द्वारा परिपत्र की प्रयोज्यता पर विचार नहीं किया गया था। यह मामला रियायत और पक्षों के बीच समझौते के आधार पर तय किया गया था। राजस्थान आवास बोर्ड की ओर से हमारे समक्ष यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि न्यायालय के समक्ष अनधिकृत रूप से दी गई उपरोक्त रियायत को वापस लेने के लिए एक पुनर्विचार याचिका दायर की गई थी। चाहे जो भी हो, हमारी राय में, परिपत्र अपने आप में लागू नहीं है और इस मामले में *श्रीमती रत्नी देवी (पूर्वोक्त)* के निर्णय पर भरोसा करना स्पष्ट रूप से खण्ड पीठ की ओर से

एक दुर्भाग्य था। कोई नकारात्मक समानता का दावा नहीं किया जा सकता।

48. इससे पूर्व परिपत्र दिनांक 13.12.2001 को राजस्थान सरकार के उप सचिव द्वारा विकसित भूमि के 15% आवंटन के संबंध में जारी किया गया था। यह राज्यपाल के नाम पर जारी नहीं किया गया है। इस न्यायालय ने *जयपुर विकास प्राधिकरण व अन्य बनाम विजय कुमार दाता व अन्य [2011 (12) एससीसी 94]* वाले मामले में ऐसे परिपत्रों की प्रवर्तनीयता पर विचार किया है। इस न्यायालय ने *जयपुर विकास प्राधिकरण बनाम राधे श्याम [1994 (4) एससीसी 370]* वाले मामले में निर्णय का उल्लेख किया है जिसमें मुआवजे के अलावा भूखंडों को आवंटित करने के एलएओ के निर्णय को अपास्त कर दिया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि निष्पादन में भी वह डिक्री की वैधता या अक्षमता का प्रश्न उठाने के लिए स्वतंत्र था।

*विजय कुमार दाता (पूर्वोक्त)*में प्रासंगिक चर्चा निम्नलिखित हैः

> "12. *राधे श्याम मामले [1994 (4) एससीसी 370]* में इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि क्या भूमि अधिग्रहण अधिकारी अधिनिर्णय प्राप्तकर्ताओं, उप-अधिनिर्णय प्राप्तकर्ताओं और उनके नामित/उप-नामित लोगों को भूमि आवंटन के लिए निर्देश जारी कर सकता है। 1953 के अधिनियम की धारा 31 (3) और

(4) के प्रावधानों पर गौर करने के बाद, जिन पर प्रतिवादी की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया था, इस न्यायालय ने कहा कि भूमि अधिग्रहण अधिकारी के पास दावेदारों को भूमि का प्रत्यक्ष आवंटन करने का अधिकार क्षेत्र, शक्ति या प्राधिकार नहीं था। यह निर्णय के पैरा 7 के निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट रूप से पता चलता है:

"7. हमारी सुविचारित राय में धारा 31 की उपधारा (4) के पठन से संकेत मिलता है कि भूमि अधिग्रहण अधिकारी के पास मुआवजे के बदले में अधिग्रहण के तहत या किसी अन्य भूमि को देने की कोई शक्ति या अधिकार क्षेत्र नहीं है। उपधारा (4) यद्यपि प्रतिकर के भुगतान के मामले में उसे शक्ति प्रदान करती है, यह उसे प्रतिकर के बदले में कोई भूमि देने के लिए सशक्त नहीं करती है।उपधारा (3) स्पष्ट रूप से 'बदले में केवल किसी अन्य भूमि को आबंटित करने'की शक्ति प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में, अधिग्रहण के अंतर्गत, भूमि धारा 31 (3) के तहत मुआवजे के बदले में आवंटित नहीं की जा सकती है, वह भी केवल एक व्यक्ति को जो सीमित हित रखता हो। इस समस्या

को एक अलग दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। धारा 4 (1) के तहत, उपयुक्त सरकार सार्वजनिक प्रयोजन के लिए आवश्यक किसी विशेष भूमि को अधिसूचित करती है। धारा 6 के तहत घोषणा के प्रकाशन पर, निर्दिष्ट सीमांकन के साथ भूमि की सीमा सार्वजनिक प्रयोजन के लिए आवश्यक भूमि के रूप में स्पष्ट हो जाती है।यदि धारा 5-ए के तहत जांच समाप्त कर दी गई, तो धारा 17(1) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, जिलाधीश को धारा 17, 9 और 10 के तहत नोटिस जारी करने पर सार्वजनिक उद्देश्य के उपयोग के लिए अधिग्रहित भूमि का कब्जा लेने का अधिकार है। अन्यथा भी अधिनिर्णय देने और मुआवजे का भुगतान करने की पेशकश करने पर उसे धारा 16 के तहत भूमि पर कब्जा करने का अधिकार है। इस तरह की भूमि सरकार के पास सभी तरह की भारों से मुक्त होगी। धारा 48 के तहत सरकार के लिए एकमात्र शक्ति कब्जा लेने से पहले भूमि को गैर-अधिसूचित करना है। इस प्रकार, अधिनियम की योजना में, भूमि अधिग्रहण अधिकारी के पास मुआवजे के एवज में अधिग्रहीत भूमि के एक हिस्से पर कब्जा करने का

दावा करने के लिए पूर्व मालिक में कोई बाधा या अधिकार बनाने की कोई शक्ति नहीं है। यदि भूमि अधिग्रहण अधिकारी की इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाता है तो यह आत्म-पराजय और सार्वजनिक उद्देश्य के लिए विनाशकारी होगा।"

13. राधेश्याम मामले (उपरोक्त) में न्यायालय ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि क्या अपीलकर्ता निष्पादन कार्यवाही में अधिनिर्णय को चुनौती दे सकता है और इसका सकारात्मक उत्तर दिया। इस निष्कर्ष के कारण निर्णय के पैरा 8 में निहित हैं, जिसका प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया हैः

"8. ... हम पहले ही कह चुके हैं कि जो निष्पादन योग्य है वह केवल धारा 26 (2) के तहत एक अधिनिर्णय है, अर्थात् अधिग्रहित भूमि में संबंधित व्यक्तियों के हितों के दावों या निर्धारित की गई राशि। इसलिए, डिक्री धारा 11 के तहत निर्धारित मामलों या धारा 18 के तहत संदर्भित और निर्धारित मामलों के अलावा किसी अन्य मामले को शामिल नहीं किया जा सकता है। चूंकि हम पहले ही अभिनिर्धारित कर चुके हैं कि भूमि अधिग्रहण अधिकारी के पास मुआवजे के

बदले में भूमि आवंटित करने का कोई अधिकार या क्षेत्राअधिकार नहीं है, यहां तक कि धारा 18 के तहत डिक्री, यदि कोई हो, धारा 11 के तहत दिए गए भूमि के आवंटन के लिए दिए गए निर्देशों की किसी भी मान्यता की सीमा तक अमान्य है। अपीलकर्ता इस संबंध में निष्पादन में डिक्री की अविधिमान्यता, अकृतता को उठाने के लिए स्वतंत्र है तदनुसार, हम अभिनिर्धारित करतें हैं कि अधिनिर्णय में निहित भूमि के कब्जे के परिदान का निर्देश देने वाली निष्पादन कार्यवाही अमान्य, शून्य और अनिष्पादनीय है।

(जोर दिया गया)

49. *विजय कुमार दाता (पूर्वोक्त)*में, इस न्यायालय ने *जयपुर विकास प्राधिकरण बनाम दौलत मल जैन [1997 (1) एससीसी 35]* में दिए गए फैसले का निम्नलिखित शब्दों में उल्लेख किया:

"14. राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा 1992 के डीबीसीएसएडब्ल्यू संख्या 680 में पारित आदेश दिनांक 24-9-1993 की वैधता और शुद्धता पर जयपुर विकास प्राधिकरण बनाम दौलत मल जैन (उपर्युक्त) में विचार किया गया था। इस न्यायालय ने उल्लेख किया कि राजस्थान के लोकायुक्त ने

तत्कालीन शहरी विकास और आवास विभाग मंत्री, जयपुर विकास प्राधिकरण के आयुक्त और लाल कोठी योजना के क्षेत्रीय अधिकारी के कार्यों की कड़ी आलोचना की थी, जिसने राजस्थान सुधार ट्रस्ट (शहरी भूमि का निस्तारण) नियम, 1974 का हवाला दिया था और अभिनिर्धारित किया:-

"22. इसलिए, सरकार द्वारा कोई नीति निर्धारित नहीं की गई थी और इसे उपर्युक्त नियमों के विपरीत नहीं रखा जा सकता था और कार्यकारी कार्रवाई द्वारा व्यक्तिगत मंत्री को ऐसी कोई शक्ति नहीं दी गई थी, चूंकि भूमि पहले से ही धारा 6(1) के तहत सार्वजनिक उद्देश्य, अर्थात् निर्धारित योजना के लिए निर्णायक रूप से अधिसूचित की गई थी। चूंकि जिन व्यक्तियों की भूमि का अधिग्रहण किया गया था, वे उसमें सीमित हित के मालिक नहीं थे, चूंकि मालिकों ने अधिकार, स्वामित्व और हित खो दिया था, धारा 4(1) के तहत अधिग्रहण के बाद उप-अधिनिर्णय पाने वालों या नामांकित व्यक्तियों को भूमि कोई स्वामित्व नहीं मिलेगा और न ही मंत्री के इस तरह के अधिकार क्षेत्र के बाहर के कार्य सरकार को बाध्य करेंगे। इसलिए,

स्पष्ट कारणों से अपीलीय प्राधिकरण के मंत्री-सह-अध्यक्ष और नौकरशाहों द्वारा की गई कार्रवाई, प्रतिवादियों को आवंटन के अधिकार के किसी भी अवशेष से वंचित नहीं करेगी। उत्तरदाताओं के तर्कों को स्वीकार करना खतरनाक परिणामों से भरा होगा। यह घोषित सार्वजनिक उद्देश्य को विफल करने वाली योजनाओं को ध्वस्त करने के लिए जहरीले बीज भी वहन करेगा। अभिलेख से पता चलता है कि कई मामलों में इस तरह का आवंटन शहरी भूमि सीमा अधिनियम का उल्लंघन था, जो शहरी भूमि की निर्धारित सीमा से अधिक भूमि को रखने पर प्रतिबंध लगाता है। कुछ उदाहरणों में, एक व्यक्ति जिसकी 500 वर्ग गज की भूमि का अधिग्रहण किया गया था, को 2000 वर्ग गज और उससे अधिक के आवंटन के साथ मुआवजा दिया गया था, जो कि शहरी भूमि सीमा अधिनियम को भी विफल करने वाली सार्वजनिक नीति के खिलाफ है। क्या कोई जिम्मेदार मंत्री या नौकरशाह, सार्वजनिक कर्तव्य और जिम्मेदारी की भावना के साथ, योजना के नियोजित विकास को विफल करने के लिए ऐसी भूमि को स्थानांतरित करेगा? जवाब स्पष्ट रूप से

नकारात्मक होना चाहिए। आवश्यक निष्कर्ष यह है कि नीति में सार्वजनिक उद्देश्य का कोई प्रतीक चिन्ह नहीं है, लेकिन सार्वजनिक कार्यालय के दुरुपयोग से सार्वजनिक उद्देश्य को विफल करने वाली सार्वजनिक संपत्ति के अवैध परितोषण या वितरण के लिए एक युक्ति प्रतीत होता है।

15. न्यायालय ने *दौलत मल जैन (पूर्वोक्त)*मामले में आगे अभिनिर्धारित किया कि मंत्री द्वारा लिया गया निर्णय और नौकरशाहों की कार्यवाहियाँ केवल उन लोगों को लाभ पहुंचाने के लिए थीं जिन्होंने धारा 4 के तहत जारी अधिसूचना के प्रकाशन के बाद अवैध रूप से भूमि का हस्तांतरण किया प्राप्त किया था और यह तथाकथित नीति भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने और सार्वजनिक उद्देश्य को विक्षेपित करने की नीति है। यह निर्णय के पैरा 23 से स्पष्ट होता है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"23. इस बात का रत्ती भर भी साक्ष्य अभिलेख पर नहीं है कि तथाकथित नीति के तहत, आम जनता में से कोई भी समान रूप से भूखंडों के आवंटन के लिए आवेदन कर सकता था या ऐसे आवंटन के लिए

आवेदन करने के योग्य था और न ही ऐसी कोई सामान्य नीति हमारे संज्ञान में लाई गई थी।इस आवंटन से केवल एक निर्दिष्ट वर्ग अर्थात पुरस्कार विजेताओं, उप-पुरस्कार विजेताओं या नामांकित व्यक्तियों को लाभ हुआ है और किसी और को नहीं। मंत्री द्वारा लिया गया निर्णय या नौकरशाहों के कार्यों उपरोक्त वर्ग तक ही सीमित थे जिसमें प्रतिवादिगण शामिल थे। पूर्व मालिक और एलएओ छोटे लाल के शून्य कार्यों को वैधता प्रदान की गई। मंत्री द्वारा निर्देश दिए गए और नौकरशाहों ने अति शून्य अधिनियमों के तहत भूमि आवंटित करने का कार्य किया।उनकी शक्ति अधिकारातीत हैं। ये कृत्य कानून और नियमों की पूरी तरह से अवहेलना करते हैं। इसलिए, कल्पना के किसी भी विस्तार से यह नहीं कहा जा सकता है कि उस पर सार्वजनिक नीति की मुहर है; बल्कि यह भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने और सार्वजनिक उद्देश्य को विक्षेपित करने और एक निर्दिष्ट श्रेणी पर लाभ प्रदान करने के लिए एक नीति है, जैसा कि ऊपर वर्णित है।"

50. इस न्यायालय द्वारा *दौलत मल जैन (पूर्वोक्त)* वाले विनिश्चय के प्रति निर्देश करते हुए *विजय कुमार दाता (पूर्वोक्त)*में विभेद के अभिवाक पर प्रतिकूल टिप्पणी की गई थी।

> "16. *दौलत मल जैन मामले (पूर्वोक्त)*में इस न्यायालय द्वारा विभेद के अभिवाक को, जिसे उच्च न्यायालय का समर्थन मिला, को भी निम्नलिखित टिप्पणियों द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था:
>
> "24. फिर सवाल यह है कि क्या प्रतिवादियों को जमीन का कब्जा अन्य व्यक्तियों के बराबर नहीं देने की कार्रवाई एक अधिकारातीत कृत्य है और संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है? हमने अपीलकर्ताओं को एक हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया था, जिसमें दूसरों को किए गए आवंटन के संबंध में की गई कार्रवाई की व्याख्या की गई थी। उपायुक्त श्री पवन अरोड़ा द्वारा इस संबंध में एक शपथ पत्र दायर किया गया है कि 47 व्यक्तियों के संबंध में आवंटन रद्द कर दिया गया था और कब्जा नहीं दिया गया था। उन्होंने इस न्यायालय और उच्च न्यायालय में और निष्पादन न्यायालय के लंबित विभिन्न मामलों को अन्य मामलों के संबंध में सूचीबद्ध

किया। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि जब भी कोई व्यक्ति एलएओ के आदेश को लागू कराने के लिए न्यायालय गया था, तो अपीलकर्ता प्राधिकरण ने इस तरह की कार्रवाइयों का विरोध किया था और आमतौर पर विभिन्न कार्यवाहियों में प्रतिकूल आदेश दिए गए थे। इसलिए, अपीलकर्ता प्राधिकरण के वर्तमान गठन के द्वार पर निष्क्रियता या दूसरों के पक्षपात का कोई दोष नहीं लगाया जा सकता है।जब मंत्री अध्यक्ष थे और उन्होंने अवैध आवंटन किया था, जिसके बाद कब्जा दिया गया था, तब इस तरह के किसी भी अवैध आवंटन को अस्थिर करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। इसके अलावा, वे लंबित मामलों के परिणाम का इंतजार कर रहे थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नौकरशाहों की वर्तमान व्यवस्था ने दावों को निलंबित करने के लिए नए मानक स्थापित किए हैं और कानून की प्रक्रिया द्वारा से मंत्री और पूर्ववर्ती नौकरशाहों अधिकारातीत कार्यों को वैध बनाने की कोशिश कर रही है ताकि अवैध और अधिकारातीत कार्यों को वैध नहीं ठहराया जा सके और न ही अनुच्छेद 14 की सहायता से स्थायी बनाए रखा जा

सके। इसके अलावा, अनुच्छेद 14 में अवैध और विधि विरुद्ध कार्य को वैध बनाने के लिए कोई आवेदन या औचित्य नहीं है। अनुच्छेद 14 इस आधार पर आगे बढ़ता है कि एक नागरिक के पास विधिक और विधि द्वारा प्रवर्तनीय वैध अधिकार हैं और समान अधिकार वाले व्यक्तियों और समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों को इसके लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति को समान लाभ से वंचित करने के लिए भेदभाव नहीं किया जा सकता है।तर्कसंगत संबंध और कानूनी समर्थन समान रूप से स्थित व्यक्तियों के मामले में समानता के सिद्धांत को लागू करने के लिए आधार हैं।यदि कुछ व्यक्तियों ने अवैधता से लाभ प्राप्त न्यायालय है और कानून के शिकंजे से बच गए हैं, तो समान व्यक्ति न तो दलील दे सकते हैं और न ही न्यायालय यह स्वीकार कर सकसकता है कि कानून के उल्लंघन से लाभ हुआ है और उसे बनाए रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। क्या इसी अधिकारातीत या अवैध या अधिकारातीत कार्यों की अनुमति देकर किसी एक अवैधता को और

जटिल बनाया जा सकता है? जवाब स्पष्ट रूप से नहीं है।"

51. *विजय कुमार (पूर्वोक्त)* वाले मामले में, इस न्यायालय ने प्रशासन के उप सचिव द्वारा दिनांक 6.12.2001 को जारी किए गए राज्य सरकार के परिपत्र को उद्धृत करने के पश्चात् निम्नलिखित अवलोकन किया हैः

"49. जैसा भी मामला हो (अनुच्छेद 77 (अनुच्छेद 77) 1) और 166(1)) यह कहना उचित है कि भारत सरकार और किसी राज्य की सरकार की सभी कार्यकारी कार्यवाहियों को संबंधित राज्य के राष्ट्रपति या राज्यपाल के नाम से लिया जाना आवश्यक है, राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल के नाम से किए गए और निष्पादित किए गए आदेश और अन्य लिखत, जैसा भी मामला हो, को राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा बनाए जाने वाले नियमों में निर्दिष्ट तरीके से प्रमाणित करने की आवश्यकता होती है, जैसा भी मामला हो (अनुच्छेद 77(2) और 166(2))।

52. अनुच्छेद 166 का निर्वचन *बिहार राज्य बनाम कृपालु शंकर (1987 (3) एस. सी. सी. 34)*में किया गया और यह मत व्यक्त किया गयाः

"14. अब, एक राज्य में सरकार का कामकाज संविधान के अनुच्छेद 166 द्वारा शासित होता है, जो निर्धारित

करता है कि मुख्यमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद होगी, जो राज्यपाल को अपने कार्यों के प्रयोग में सहायता और सलाह देगी सिवाय जहां उसे संविधान के तहत अपने विवेकानुसार अपने कार्यों का प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। अनुच्छेद 166 सरकारी कामकाज के संचालन का प्रावधान करता है। इस अनुच्छेद को उद्धृत करना उपयोगी होगा:

"166. **किसी राज्य की सरकार के कामकाज का संचालन।**

(1) किसी राज्य की सरकार की सभी कार्यकारी कार्रवाई राज्यपाल के नाम पर की गई व्यक्त की जाएगी।

(2) राज्यपाल के नाम से बनाए और निष्पादित किए गए आदेश और अन्य दस्तावेज राज्यपाल द्वारा बनाए जाने वाले नियमों में निर्दिष्ट तरीके से प्रमाणित किए जाएंगे, और निर्देश पर एक आदेश की वैधता जो इस प्रकार प्रमाणित है, नहीं होगी इस आधार पर प्रश्नगत किया जाता है कि यह राज्यपाल द्वारा किया गया या निष्पादित किया गया आदेश या लिखत नहीं है।

(3) राज्यपाल राज्य सरकार के कार्यों के अधिक सुविधाजनक संचालन के लिए और उक्त कार्य के मंत्रियों के बीच आवंटन के लिए नियम बनाएगा, जहां तक कि यह ऐसा कार्य नहीं है जिसके संबंध में राज्यपाल द्वारा या इस संविधान के तहत अपने विवेक से कार्य करने की आवश्यकता है।

15. अनुच्छेद 166(1) में यह आवश्यक है कि राज्य सरकार की सभी कार्यकारी कार्रवाई राज्यपाल के नाम पर की गई कही जाएगी। यह खंड उन मामलों से संबंधित है जहां कार्यकारी कार्रवाई को औपचारिक आदेश या अधिसूचना के रूप में व्यक्त किया जाना है। यह उस तरीके को निर्धारित करता है जिसमें एक कार्यकारी कार्रवाई व्यक्त की जानी है। अतः विभागीय फाइल में किसी अधिकारी द्वारा नोट किया जाना इस अनुच्छेद के अंतर्गत नहीं आएगा और न ही किसी मंत्री द्वारा नोट किया जाएगा। प्रत्येक कार्यकारी निर्णय को अनुच्छेद 166 (1) के तहत निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन जब यह एक आदेश का रूप लेता है तो उसे अनुच्छेद 166 (1) का पालन करना होता है। अनुच्छेद 166(2) में कहा गया है कि

अनुच्छेद 166(1) के तहत किए गए और निष्पादित किए गए आदेश और अन्य लिखतों को निर्धारित तरीके से प्रमाणित किया जाएगा। जबकि खंड (1) अभिव्यक्ति के तरीके से संबंधित है, खंड (2) उस तरीके को निर्धारित करता है जिसमें आदेश को अधिप्रमाणित किया जाना है और खंड (3) सरकार के कार्य के अधिक सुविधाजनक संचालन के लिए राज्यपाल द्वारा नियम बनाने से संबंधित है। अतः, इस अनुच्छेद का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि फाइल में नोट करना पक्षकारों के अधिकार को प्रभावित करने वाले आदेश में तभी परिणत होता है जब वह विभाग के प्रमुख तक पहुंचता है और अनुच्छेद 166 (2) में उपबंधित रीति से अधिप्रमाणित राज्यपाल के नाम से अभिव्यक्त होता है।"

53. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब तक कोई आदेश राष्ट्रपति या राज्यपाल के नाम पर अभिव्यक्त नहीं किया जाता है और नियमों द्वारा विहित रीति से अधिप्रमाणित नहीं किया जाता है, तब तक उसे सरकार की ओर से किए गए आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है। दिनांक 6-12-2001 के पत्र के पढ़ने से पता चलता है कि यह न तो राज्यपाल के नाम से व्यक्त किया गया था और न ही इसे नियमों द्वारा निर्धारित तरीके से

प्रमाणित किया गया था। वह पत्र केवल समिति द्वारा की गई चर्चा और उसके द्वारा लिए गए निर्णय की बात करता है। किसी भी तरह की कल्पना से इसे संविधान के अनुच्छेद 166 के अर्थ में सरकार का नीतिगत निर्णय नहीं माना जा सकता है।

54. हमारा आगे यह विचार है कि भले ही 6-12-2001 के पत्र में निहित निर्देशों को सरकार के नीतिगत निर्णय के रूप में माना जा सकता है, उच्च न्यायालय को इसे रद्द कर देना चाहिए था क्योंकि उक्त नीति राधे श्याम मामले (पूर्वोक्त) और दौलत मल जैन मामले (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून के स्पष्ट रूप से विपरीत थी और इस न्यायालय द्वारा पहले से ही अवैध घोषित किए गए कानून को वैध बनाने के लिए राज्य के संबंधित राजनीतिक पदाधिकारियों द्वारा एक अपरिष्कृत प्रयास था।"

52. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रश्नगत परिपत्र को सोसायटी द्वारा सेवा में नहीं लगाया जा सकता है। अप्रयोज्यता के अलावा, यह भी स्पष्ट है कि इस तरह के परिपत्र जारी करने का उद्देश्य उस क्रेता को लाभ पहुंचाना नहीं है, जिसने राजस्थान भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना जारी करने के बाद अधिकार प्राप्त किया है, और धारा 42 के अधिदेश का उल्लंघन किया है। परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय के पास भूमि के आवंटन का निर्देश देने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। यहां तक कि

खातेदार भी इस तरह के निर्देश/लाभ के हकदार नहीं थे क्योंकि ऐसे मामलों में परिपत्र लागू नहीं होते हैं।

53. हम *हरि राम व अन्य बनाम हरियाणा राज्य व अन्य [2010 (3) एस. सी. सी. 621]* वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को सोसाइटी की ओर से निर्दिष्ट कर सकते हैं जिसमें इस न्यायालय ने समान अधिग्रहण कार्यवाहियों से संबंधित समान रूप से स्थित व्यक्तियों के संबंध में विभिन्न आदेश पारित करने पर विचार किया। इस कार्रवाई को भेदभावपूर्ण होने के कारण अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना गया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिग्रहण से वापसी के लिए विभिन्न मानकों को लागू नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामला ऐसा नहीं है। यह परिपत्र लागू नहीं होता है। हम राज्य को उन परिपत्रों पर कार्यवाही करने का निर्देश नहीं दे सकते जो लागू नहीं होते हैं। इस संहिता के तहत कि राज्य की सभी कार्यवाहियाँ निष्पक्ष और वैध होनी चाहिए, हम नकारात्मक समानता पैदा नहीं कर सकते और वह भी एक रियायती बयान के बल पर, जो परिपत्र द्वारा प्रदान नहीं किया गया है, लाभ प्रदान नहीं कर सकते। रत्नी देवी के वाद में अधिवक्ता द्वारा की गई रियायत (उपरोक्त) परिपत्र के दायरे को व्यापक नहीं कर सकती है।

54. हम उषा स्टूड एंड एग्रीकल्चरल फार्म्स प्राइवेट लिमिटेड व बनाम हरियाणा राज्य व अन्य [2013 (4) एससीसी 210] में दिए गए अन्य फैसलों का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें यह निर्धारित किया गया है

कि एक बार राज्य सरकार ने भूमि जारी करने का सचेत निर्णय ले लिया है तो अपीलकर्ताओं के साथ समान व्यवहार न करने के लिए राज्य के लिए कोई औचित्य नहीं होगा, सोसाइटी के लिए भी कोई फायदा नहीं होगा।

55. वर्तमान मामले में दिए जाने वाले मुआवजे की मात्रा के संबंध में, संबंधित अपीलों में सोसायटी और खातेदारों की ओर से यह प्रस्तुत किया गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मुआवजा कम है। पर्याप्त मुआवजा निर्धारित नहीं किया गया है। यह तर्क दिया गया था कि मौखिक साक्ष्य जिस पर संदर्भ न्यायालय द्वारा भरोसा किया गया था, उस पर उच्च न्यायालय द्वारा कार्रवाई की जानी चाहिए थी। यह तर्क दिया गया कि मौखिक साक्ष्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। *गुजरात व अन्य बनाम रामा राणा वअन्य [1997 (2) एस. सी. सी. 693], सत्यनारायण व अन्य बनाम भु अर्जन अधिकारी व अन्य [2011 (15) एस. सी. सी. 133] और रमनलाल देवचंद शाह बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य [2013 (14) एससीसी 50]* के निर्णयों के आधार पर।

56. प्रति वर्ग गज भूमि की कीमत संदर्भ न्यायालय द्वारा निर्धारित की गई थी। संदर्भ न्यायालय द्वारा संदर्भित दस्तावेजी साक्ष्य में 135 रुपये प्रति वर्ग गज की दर से 26.8.1982 का प्रदर्श 1 करार शामिल है, प्रदर्श 3 करार दिनांक 7.1.1982, 165 प्रति वर्ग गज की दर से, 244 वर्ग गज के लिए 135 रुपये प्रति वर्ग गज की दर से करार दिनांक 28.9.1981

और करार दिनांक 5.5.1979 रुपये 94 प्रति वर्ग गज की दर से 1983 के कुछ लेन-देन भी संदर्भित किए गए थे, जिन्हें धारा 4 के तहत अधिसूचना की तारीख के बाद से अनदेखा किया जाना है। हालांकि, गवाहों के मौखिक बयान का जिक्र करते हुए, जिसमें मूल्य बहुत अधिक बताया गया था, संदर्भ न्यायालय 260 रुपये प्रति वर्ग गज के निष्कर्ष पर पहुंच गया है। उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने मौखिक और दस्तावेजी दोनों साक्ष्यों पर विचार किया और उन्हें संदर्भित किया। प्रदर्श 1 करार दिनांक 26.8.1982 कृष्ण विहार गोपालपुरा में स्थित भूखंड संख्या 55 की बिक्री के बारे में 115 रुपए प्रति वर्ग गज की दर से, प्रदर्श-3 200 वर्ग गज भूमि की बिक्री के लिए करार है। करार दिनांक 7.1.1982, 165 रुपए प्रति वर्ग गज की दर से महारानी फार्म दुर्गापुरा में स्थित है। 244 वर्ग गज भूखंड की बिक्री 135 रूपये प्रति वर्ग गज के लिए करार प्रदर्श- 4 है, 18000 वर्ग गज के भूखंड का करार प्रदर्श-5 दिनांक 24.7.1982, 125 रूपये प्रति वर्ग गज की दर से है, कुल राशि रूपये 22,55,000 मीना कुमारी हाउसिंग सोसायटी और न्यासी देवी शंकर तिवारी के बीच तय की गई, प्रदर्श- 7, 147 वर्ग गज भूमि की बिक्री के लिए दिनांक 16.9.1983 का करार 22,100/- लगभग रुपयों का है जो लगभग 150 रुपये प्रति वर्ग गज है। और ग्राम पंचायत भाग्यवास में स्थित भूमि, 34,000 वर्ग गज का करार प्रदर्श-8 दिनांक 5.5.1979, 90-94 रुपये प्रति वर्ग गज है।

57. इसने मौखिक साक्ष्य पर भी विस्तार से विचार किया है और उस पर भरोसा नहीं किया है और औसत मूल्य 135 रुपये प्रति वर्ग गज पर आ गया है, जिससे बड़े क्षेत्र का अधिग्रहण किया जा चुका है। यदि विचाराधीन क्षेत्र विकसित किया गया था, तो निश्चित क्षेत्र को विकास में जाना तय था। इस प्रकार, 100 रुपये प्रति वर्ग गज के आंकड़े पर पहुंचने के लिए जो कटौती की गई है वह उचित है। हम मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पाते हैं कि एकल पीठ द्वारा निकाला गया निष्कर्ष उचित है। इसके बारे में कोई संदेह नहीं है। मौखिक साक्ष्य पर भी विचार किया जा सकता है लेकिन इस मामले के तथ्यों में सबसे अच्छा साक्ष्य दस्तावेजी साक्ष्य है जो मान्य होना चाहिए। प्रति वर्ग गज भूमि की कीमत साबित करने वाले दस्तावेजी साक्ष्य के सामने मौखिक साक्ष्य जो कि अप्रमाणित कथन पर आधारित था और बिना किसी ठोस आधार के, संदर्भ न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार, जो गंभीर गलती की गई थी, उसे उच्च न्यायालय की एकल पीठ द्वारा सही रूप से शून्य कर दिया गया था, मुआवजे के निर्धारण में भी एक खंडपीठ द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया गया था।

58. मौखिक साक्ष्य की स्वीकृति के संबंध में *गुजरात राज्य व अन्य बनाम रामा राणा व अन्य [1997 (2) एससीसी 693]* पर भरोसा किया गया है जिस मामले मे कृषि विभाग की ओर से फसलों की प्रकृति और उस समय प्रचलित कीमतों के आंकड़े तैयार करने में विफलता थी। उस संदर्भ में, यह

देखा गया कि इस तरह की विफलता के कारण मौखिक साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता है और अदालत का कर्तव्य है कि वह मौखिक साक्ष्य की गहन जांच करे और मुआवजे पर निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए साक्ष्य का निष्पक्ष और निरपेक्ष रूप से मूल्यांकन करे।

59. *सत्यनारायण बनाम भू-अर्जन अधिकारी व अन्य [2011 (15) एससीसी 133]*पर भी भरोसा जताया गया है जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि संदर्भ न्यायालय द्वारा साक्ष्य का विश्लेषण संतोषजनक होना चाहिए। *रमनलाल देवचंद शाह बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य [2013 (14) एससीसी 50]*पर भी भरोसा किया गया है, जिसमें कहा गया है कि यह दावेदार को साबित करना है कि कलेक्टर द्वारा दी गई राशि में वृद्धि की आवश्यकता है और उस उद्देश्य के लिए, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य जोड़े जा सकते हैं और जब भौतिक साक्ष्यों पर विचार नहीं किया जाता है, तो मामले को मुख्य साक्ष्य के लिए भेजा जा सकता है। इस मामले में, उच्च न्यायालय द्वारा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की उचित जांच और मूल्यांकन क्या जाता है। मुआवजे के निर्धारण के संबंध में उच्च न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखा जाना चाहिए।

60. उच्च न्यायालय ने खातेदारों द्वारा दायर आदेश 1 नियम 10 के तहत आवेदन को खारिज कर दिया है।इ स मामले के तथ्यों में, विशेषकर जब राजस्थान काश्तकारी अधिनियम की धारा 42 के उल्लंघन का मामला राज्य सरकार द्वारा उठाया गया था और सन्दर्भ 1982 में खातेदारों के

पक्ष में पारित अधिनिर्णय के रूप में भी था जिसमें सोसायटी को मुआवजा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। स्पष्ट रूप से, खातेदारों को सुना जाना आवश्यक था क्योंकि उनके अधिकार का निर्णय इस मामले में शामिल था कि किसको मुआवजा देय है, और क्या सोसायटी शून्य लेनदेन के आधार पर मुआवजे का दावा करने की हकदार थी। हमारे समक्ष यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया था कि खातेदारों ने धारा 30 के तहत सोसायटी के खिलाफ संदर्भ मांगा है, उस कार्यवाही में उस प्रश्न का निर्णय किया जा सकता है। हालांकि, इस मामले में तथ्यात्मक स्थिति और समाज की पात्रता के रूप में प्रश्न का निर्धारण आवश्यक है, जैसा कि हमने इसे तय किया है। इससे भी अधिक, अनुसूचित जाति के खातेदारों के दलित वर्ग की दुर्दशा को लंबे समय तक नहीं बढ़ाया जा सकता है और उनके संरक्षण के लिए बनाए गए प्रावधानों और संवैधानिक अधिदेश को देखते हुए, हम पक्षकारों के बीच विवाद को शांत करने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करने के इच्छुक हैं और यह मानते हैं कि केवल खातेदार, यदि उनमें से कुछ की मृत्यु हो गई है, तो उनके कानूनी प्रतिनिधि मुआवजे को प्राप्त करने के हकदार होंगे जो कि वर्तमान मामले में निर्धारित किया गया है।

61. अनुसूचित जाति के व्यक्तियों के हितों की रक्षा के लिए, हम आगे निर्देश देते हैं कि सोसायटी या अन्य मध्यस्थ, या मुख्तारनामा धारक को उनकी ओर से मुआवजा नहीं दिया जाएगा और कलेक्टर/भूमि अधिग्रहण

अधिकारी को यह सुनिश्चित करने के लिए कि मुआवजा दिया गया है खातेदारों या उनके कानूनी प्रतिनिधियों, जैसा भी मामला हो, को सीधे वितरित किया जाता है, और यह कि वे भूमि हड़पने वालों आदि के किसी भी अनैतिक युक्ति से वंचित नहीं हैं। आज से तीन महीने की अवधि के भीतर मुआवजा अन्य अनुज्ञेय वैधानिक लाभों के साथ वितरित किया जाए।

62. विकसित भूमि का 25% अनुदान देने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश एतदद्वारा रद्द किया जाता है।राजस्थान हाउसिंग बोर्ड एवं खातेदारों द्वारा प्रस्तुत अपीलों को उपरोक्त सीमा तक स्वीकार किया जाता है तथा शेष अपीलों को खारिज किया जाता है।पक्षकार अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे।

भारत के मुख्य न्यायाधीश

(एच. एल. दत्तू)

न्यायाधीश

(ए. के. सीकरी)

न्यायाधीश

(अरुण मिश्रा)

नई दिल्ली; 1 मई, 2015

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास'के जरिए अनुवादक की सहायता से किया गया है।

अस्वीकरण :यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा ।